श्रीगुरवे नमः

कुञ्चिताधरपुटेन पूरयन् वंशिकां प्रचलदङ्गुलिपङ्क्तिः।
मोहयन्नखिलवामलोचनाः पातु कोऽपि नवनीरदच्छविः।।

आचार्यगङ्गेशोपाध्यायकृता

पञ्चलक्षणी

श्रीमथुरानाथतर्कवागीशरचितमाथुरीसहिता

हिन्दीव्याख्यया च समन्विता

प्रथमं व्याप्तिलक्षणम्

प्रथमलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

प्रो० पीयूषकान्तदीक्षितः

व्याप्ति पञ्चक नामक प्रकरण ग्रन्थ में व्याप्ति के पाँच लक्षणों का विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में नव्यन्याय के प्रथम आचार्य गङ्गेश उपाध्याय जी ने जिज्ञासा की है—

चिन्तामणिः

नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः?

(ननु अनुमिति—हेतु—व्याप्ति—ज्ञाने का व्याप्तिः?)

''अनुमिति के हेतु व्याप्ति—ज्ञान में व्याप्ति क्या है?''

इस जिज्ञासा वाक्य में जो संस्कृत में है प्रथम शब्द 'ननु' है। इसका प्रयोग सन्देह के उपस्थापन के लिए शास्त्रकारों द्वारा प्रायः किया जाता है।

माथुरी

अनुमानप्रामाण्यं निरूप्य व्याप्तिस्वरूपनिरूपणमारभते 'ननु' इत्यादिना। 'अनुमितिहेतु' इत्यस्य 'अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेतु' इत्यर्थः। 'व्याप्तिज्ञाने' इत्यत्र च विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथा च अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानविषयीभूता व्याप्तिः का? इत्यर्थः। अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेत्वित्यनेन व्याप्तेरनुमान–प्रामाण्योपपादकत्वकथनादनुमानप्रामाण्यनिरूपणानन्तरं व्याप्ति–निरूपणे उपोद्घात एव सङ्गतिः सूचिता। उपपादकत्वञ्चात्र ज्ञापकत्वम्।

आचार्य गङ्गेश उपाध्याय, अनुमान के प्रामाण्य का निरूपण करने के अनन्तर व्याप्ति के स्वरूप का निरूपण आरम्भ करते हैं। यह आरम्भ 'ननु' इत्यादि वाक्य के माध्यम से किया जा रहा है। इस वाक्य में 'अनुमिति–हेतु' पद का अर्थ– 'अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु' है। वाक्य का अगला पद 'व्याप्ति–ज्ञाने' है। यहाँ व्याप्ति–ज्ञान पद के बाद जो सप्तमी विभक्ति है उसका अर्थ विषयत्व है; यह मथुरानाथ तर्कवागीश का स्पष्ट अभिमत है। इस प्रकार सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ– 'अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु जो व्याप्ति–ज्ञान, उसमें विषय होने वाली व्याप्ति क्या है?' यह होता है। अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु

यह कहने से व्याप्ति में अनुमान–प्रामाण्य के उपपादकत्व का कथन स्वतः ही हो जाता है। फलतः अनुमान–प्रामाण्य के निरूपण के अनन्तर व्याप्ति के निरूपण में उपोद्घात ही सङ्गति है, यह सूचना प्राप्त होती है। प्रस्तुत सन्दर्भ में उपपादकत्व, ज्ञापकत्व अर्थ का बोधक है।

'अनुमिति' पद का अर्थ अनुमान में होने वाली प्रामाण्य की अनुमिति है। इस प्रामाण्य की अनुमिति का हेतु व्याप्ति–ज्ञान, प्रमितिकरणता का अवच्छेदक धर्म, प्रमाणत्व की व्याप्ति से विशिष्ट है; इस प्रकार होता है। इस व्याप्ति के ज्ञान में विषय जो प्रमाणत्व की व्याप्ति है, वह क्या है? यह उपर्युक्त जिज्ञासा का एक अर्थ है।

इस प्रामाण्य की अनुमिति में पक्ष अनुमान है। प्रमाणत्व या प्रामाण्य साध्य है। प्रमितिकरणतावच्छेदक धर्म हेतु है।

'अनुमानं प्रमाणम्' इस आकार वाले, अनुमान निष्ठ प्रामाण्यानुमिति का हेतु व्याप्ति–ज्ञान है, अर्थात् प्रमितिकरणतावच्छेदक धर्म, प्रमाणत्व की व्याप्ति से विशिष्ट है, इस प्रकार के आकार वाला, व्याप्ति–ज्ञान है। यह कहने से, अनुमान में होने वाले प्रामाण्य के ज्ञान (अनुमिति) का जनक ज्ञान, उपर्युक्त हेतु में होने वाले व्याप्ति–ज्ञान, का विषय व्याप्ति है, यह सिद्ध हो जाता है।

दूसरे शब्दों में संक्षेप में हम शास्त्रीय भाषा में कह सकते हैं कि, अनुमान के प्रामाण्य की उपपादक व्याप्ति है। इन दोनों कथनों में मात्र भाषा का ही भेद है। दोनों ही कथनों का आशय एक ही है। ज्ञान–जनक–ज्ञान–विषयत्व ही उपपादकत्व शब्द का अर्थ होता है। उपपादकत्व या ज्ञापकत्व पद वास्तव में समानार्थक होते हैं।

इस प्रकार प्रकृत अर्थात् अनुमानप्रामाण्य का उपपादकत्व या ज्ञापकत्व अथवा ज्ञानजनकज्ञानविषयत्व, व्याप्ति में है यह स्पष्ट हो जाता है। फलतः व्याप्ति में रहने वाला यह अनुमानप्रामाण्य का उपपादकत्व ही उपोद्घात नाम

की सङ्गति है यह भी अनायास ही सिद्ध हो जाता है। इतनी चर्चा से, पूर्व प्रकरण में अनुमान के प्रामाण्य का निरूपण करने के अनन्तर उपोद्घात नामक सङ्गति होने के कारण ही इस समय व्याप्ति का निरूपण आचार्य गङ्गेश उपाध्याय कर रहे हैं, यह रहस्य प्रकाशित होता है।

जब कभी भी हम किसी कार्य को करने के अनन्तर कोई अन्य कार्य करते हैं, तब सदा, अनन्तर किये जा रहे कार्य में क्या सङ्गति है यह जिज्ञासा अवश्य होती है। यदि कोई व्यक्ति बिना किसी सङ्गति के ही कुछ करने के अनन्तर कुछ करता है तो उसके द्वारा किये जा रहे प्रयास को सभ्य समाज नितान्त उपेक्षणीय ही मानता है। यही कारण है कि भारतीय प्रामाणिक ग्रन्थों में सङ्गति के सन्दर्भ में जिज्ञासा अवश्य की जाती है।

व्याप्ति के निरूपण में उपोद्घात सङ्गति है। इस सन्दर्भ में कोई मतभेद नहीं है, परन्तु व्याप्ति के निरूपण के पूर्व किस विषय का निरूपण या विवेचन आचार्य गङ्गेश उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ चिन्तामणि में किया है इस प्रसङ्ग में अवश्य मतभेद है। ऐसे आचार्यों के अभिमत को मथुरानाथ तर्कवागीश ने अपनी व्याख्या 'रहस्य' या 'माथुरी' में केचित्तु अर्थात् कुछ लोगों का मत कह कर प्रस्तुत किया है।

माथुरी

केचित्तु अनुमितिपदम् अनुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितिपरम्, तथा चानुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितौ यो हेतुः प्रागुक्तव्याप्तिप्रकारकपक्ष–धर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्वरूपः, तद्घटकं यद्व्याप्तिज्ञानं, तदंशे विशेषणीभूता व्याप्तिः का ? इत्यर्थः। घटकत्वार्थकसप्तम्या तत्पुरुषसमासात्, तथा च प्रागुक्तानुमितिलक्षणोपोद्घात एव सङ्गतिः अनेन सूचिता इत्याहुः।

कुछ लोगों के मत में तो अनुमिति पद का अर्थ– अनुमिति में होने वाली स्व से इतर के भेद की अनुमिति है। इस प्रकार

अनुमिति में होने वाली स्वेतरभेदानुमिति में जो पूर्व में उक्त व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्व (अनुमिति—लक्षण) के रूप में प्रसिद्ध हेतु है। इस हेतु का घटक जो व्याप्ति—ज्ञान है, इसमें विशेषण के रूपमें भासमान व्याप्ति क्या है ? इस तरह उपर्युक्त चिन्तामणि—वाक्य का अर्थ करते हैं। घटकत्व अर्थ को बताने वाली सप्तमी विभक्ति मान कर यहाँ तत्पुरुष समास माना गया है। इस प्रकार व्याप्ति के स्वरूप निरूपण में पूर्वोक्त अनुमिति—लक्षण की उपोद्घात—सङ्गति है यह इस मत में सूचित होता है।

कुछ लोगों के मत में व्याप्ति निरूपण के पूर्व आचार्य गङ्गेश उपाध्याय ने चिन्तामणि नामक अपने ग्रन्थ में अनुमिति के लक्षण का विवेचन या निरूपण किया है। फलतः इन आचार्यों के मत में अनुमिति—लक्षण के निरूपण करने के अनन्तर व्याप्ति का निरूपण होने के कारण व्याप्ति में अनुमिति लक्षण से निरूपित उपोद्घात सङ्गति सिद्ध होती है।

इन कुछ आचार्यों के मत में 'ननु अनुमिति—हेतु—व्याप्ति—ज्ञाने का व्याप्तिः?' इस वाक्य में अनुमिति पद का अर्थ मथुरानाथ तर्कवागीश ने अनुमिति में होने वाली 'स्वेतरभेद की अनुमिति' किया है। इस स्वेतरभेद की अनुमिति का आकार 'अनुमितिः, स्वेतरभिन्ना' यह होता है। अनुमिति में इस स्व—इतरभेद को सिद्ध करने के लिए हेतु 'व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्व' माना जाता है। पुनः इस हेतु का घटक अर्थात् इस हेतु में अन्तर्भूत जो व्याप्ति—ज्ञान है उस व्याप्ति—ज्ञान में विशेषण के रूप में विद्यमान जो व्याप्ति है, उस व्याप्ति का स्वरूप क्या है? इस प्रकार उपर्युक्त समग्र जिज्ञासा—वाक्य का अर्थ पर्यवसित होता है।

उपर्युक्त वाक्य में अनुमिति—हेतु यह पद अनुमितौ हेतुः इस प्रकार सप्तमी तत्पुरुष समास करने के बाद निष्पन्न हुआ है। यहाँ अनुमिति पद में

जो सप्तमी विभक्ति है उसका अर्थ प्रयोजकत्व माना जाता है। अनुमिति–हेतु–व्याप्तिज्ञान पद, अनुमिति–हेतौ व्याप्तिज्ञानं इस प्रकार सप्तमी तत्पुरुष समास करने के अनन्तर व्युत्पन्न होता है। यहाँ अनुमिति–हेतु पद में जो सप्तमी विभक्ति है उसका अर्थ घटकत्व माना जाता है। किसी बड़े समूह के भीतर समाविष्ट वस्तु को घटक कहते हैं। इस घटक में रहने वाले धर्म को ही घटकत्व कहा जाता है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में स्व–इतरभेद की जो अनुमिति हो रही है उस अनुमिति में हेतु 'व्याप्ति–प्रकारक–पक्षधर्मता–ज्ञान–जन्य–ज्ञानत्व' है। इस बड़े हेतु के भीतर समाविष्ट जो व्याप्ति–ज्ञान है वह इस अनुमिति हेतु का घटक व्याप्ति–ज्ञान माना जायेगा। इस प्रकार यह सुस्पष्ट हो जाता है कि यहाँ घटकत्व अर्थ का बोध कराने वाली सप्तमी विभक्ति है तथा घटकत्वार्थक सप्तमी तत्पुरुष समास किया गया है।

इस निष्कर्ष से; पूर्व–प्रकरण में विवेचित अनुमिति के लक्षण से निरूपित उपोद्घात सङ्गति व्याप्ति के निरूपण में है यह कुछ विशिष्ट विद्वानों का आशय निर्धारित हो जाता है।

व्याप्ति क्या है? इस प्रश्न का स्वयं समाधान करते हुए आचार्य गङ्गेश उपाध्याय कहते हैं कि व्याप्ति अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य पदार्थ नहीं है। इस संसार में अव्यभिचरितत्व पाँच प्रकार के ही सम्भव हैं। ये पाँच प्रकार अधोनिर्दिष्ट हैं–

१. साध्याभाववदवृत्तित्वम्

२. साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्

३. साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्

४. सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्

५. साध्यवदन्यावृत्तित्वम्

यदि इन पाँच अव्यभिचरितत्व विशेष के बोधक पदों से व्याप्ति प्रतिपाद्य नहीं होती है, तो व्याप्ति अव्यभिचरितत्व सामान्य (इन सभी अव्यभिचरितत्व विशेष) के बोधक अव्यभिचरितत्व पद से भी प्रतिपाद्य नहीं हो सकती यह अनायास ही सिद्ध हो जाता है।

यदि कोई कहे कि पशु मनुष्य नहीं है, तो लोग इस कथन से यही अर्थ निकालते हैं कि मनुष्य पद से पशु का ज्ञान नहीं होता है। पशु मनुष्य नहीं है यह सिद्ध करने के लिए जब कोई कहता है कि पशु चूँकि ब्राह्मण नहीं है, क्षत्रिय नहीं है, वैश्य नहीं है, शूद्र नहीं है अतः मनुष्य नहीं है, तब वह यही कहना चाहता है कि पशु मनुष्य पद से प्रतिपाद्य नहीं है क्यों कि पशु ब्राह्मण 'क्षत्रिय' वैश्य एवं शूद्र पद से प्रतिपाद्य नहीं है। इस प्रकार इस लौकिक उदाहरण से भी सिद्ध हो जाता है कि किसी वस्तु के सभी विशेष का यदि कहीं अभाव हो तो उस वस्तु का सामान्याभाव भी अनायास ही वहाँ सिद्ध हो जाता है।

इसी तथ्य की ओर आचार्य गङ्गेश उपाध्याय ने भी अधोलिखित पङ्क्तियों में सङ्केत किया है—

चिन्तामणिः

न तावदव्यभिचरितत्वम्।

तद्धि न साध्याभाववदवृत्तित्वम्, साध्य—वद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्, साध्यवत्प्रति—योगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्, सकल—साध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्, साध्य—वदन्यावृत्तित्वम् वा केवलान्वयिन्यभावात्।

(न तावद्–अव्यभिचरितत्वम्, तद्–हि न साध्याभाव–वद्–अवृत्तित्वम्, साध्यवद्–भिन्न–साध्याभाववद्–अवृत्तित्वम्, साध्यवत्–प्रतियोगिक–अन्योन्याभाव–असामानाधिकरण्यम्, सकल–साध्याभाववत्–निष्ठ–अभाव–प्रतियोगित्वम्, साध्यवद्–अन्य–अवृत्तित्वम् वा केवलान्वयिनि अभावात्।)

व्याप्ति, 'अव्यभिचरितत्व' नहीं है। क्योंकि वह 'साध्याभाव–वद्–अवृत्तित्व' नहीं है, 'साध्यवद्–भिन्न–साध्याभाव–वद्–अवृत्तित्व नहीं है, साध्यवत्–प्रतियोगिक–अन्योन्याभाव–असामानाधिकरण्य नहीं है, सकल–साध्याभाववत्–निष्ठ–अभाव–प्रतियोगित्व नहीं है, साध्यवद्–अन्य–अवृत्तित्व नहीं है।

इस तरह साध्याभाव–वद्–अवृत्तित्व आदि व्यप्ति इस लिए नहीं है क्यों कि केवलान्वयि[१] साध्य वाले सद्धेतुक स्थल के हेतु में इन व्याप्ति के लक्षणों का अभाव होता है।

इदम्, वाच्यम्, ज्ञेयत्वात् इस प्रकार के स्थल केवलान्वयि साध्यक सद्धेतुक स्थल होते हैं। इस स्थल में इदम् अर्थात् अँगुलि से इङ्गित वस्तु पक्ष है। वाच्यत्व साध्य है। एवं ज्ञेयत्व हेतु है।[२]

---

१. जिस साध्य का संसार में केवल अन्वय अर्थात् भाव या सत्ता हो, व्यतिरेक अर्थात् अभाव या असत्त्व न हो उस साध्य को केवल अन्वयी अर्थात् केवलान्वयी कहते हैं।

२. स्थल का सामान्य रूप से अर्थ स्थान या जगह होता है। न्याय शास्त्र में इस शब्द का प्रयोग अनुमान के सन्दर्भ में व्याप्ति के लक्षण में दोष या समन्वय के सन्दर्भ में होता है। उदाहरणार्थ, पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् यह सद्धेतुक स्थल है तथा पर्वतः, धूमवान्, वह्नेः यह असद्धेतुक स्थल है यह व्यवहार निराबाध रूप में व्याप्ति के लक्षण को समझाने के क्रम में

माथुरी

'न तावद्' इति। 'तावत्' वाक्यालङ्कारे। 'अव्यभिचरितत्वम्' अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यम्। तत्र हेतुमाह 'तद्धि' इत्यादि 'हि' यस्मात् 'तत्' अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यम्। 'न' इति सर्वस्मिन्नेव लक्षणे सम्बद्ध्यते। तथा च व्याप्तिर्यत: साध्याऽभाव–वदवृत्तित्वादिरूपाऽव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा[1] न,

---

नैयायिकों द्वारा किया जाता है। इस व्यवहार के परीक्षण से सिद्ध होता है कि न्याय दर्शन में जब हम किसी स्थल या स्थान को, विशेष क्रम में पक्ष,साध्य एवं हेतु का वाक्य रूप में प्रयोग करते हुए निर्दिष्ट करते हैं तो उस विशिष्ट वाक्यावली को स्थल कह देते हैं। यहाँ यह अवधेय है कि स्थल का निर्देश करते हुए नैयायिक; पक्ष, साध्य एवं हेतु का जब प्रयोग करता है तब पक्ष वाचक पद में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करता है, साध्य वाचक पद में वान् या मान् शब्द का प्रयोग या प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करता है तथा हेतु वाचक पद में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग करता है हेतु में कभी–कभी तृतीया विभक्ति का प्रयोग भी देखा जाता है। पञ्चमी या तृतीया विभक्ति को हटा कर जो पद का भाग बचता है उसका अर्थ ही हेतु होता है। वान् या मान् शब्द हटा कर जो शब्द बचता है उसका अर्थ साध्य होता है। जहाँ साध्य वाचक पद में प्रथमा विभक्ति हो वहाँ इस विभक्ति को हटा कर त्व जोड़ देने से जो शब्द बनता है उसका अर्थ साध्य होता है। इस प्रकार स्थल; स्थान या जगह के साथ–साथ विशिष्ट वाक्यावली का भी बोधक है यह माना जा सकता है। जिस स्थल में हेतु दोष रहित होता है अथवा सद्धेतु होता है उसे सद्धेतुक स्थल कहा जाता है। इसी प्रकार जिस स्थल में हेतु सदोष या असद्धेतु होता है उसे असद्धेतुकस्थल कहते हैं।

१. साध्याभाववदवृत्तित्वादिरूपाव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यं स्वरूपं यस्या: सा–व्याप्ति:, अव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा।

अतोऽव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यरूपा[1] नेत्यर्थः पर्यवसितः। विशेषाऽभावकूटस्य सामान्याऽभावहेतुता च प्रसिद्धैवेति। अत एतन्नञ्द्वयोपादानं न निरर्थकम्।

'न तावद्' इत्यादि मथुरानाथ द्वारा लिखित वाक्य में 'तावत्' शब्द वाक्य को अलङ्कृत मात्र करने के लिए है। 'अव्यभि–चरितत्व'[2] पद का अर्थ अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य माना जाता है। व्याप्ति, अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य नहीं है, इसमें हेतु क्या है? इस प्रश्न का समाधान मथुरानाथ 'तद्धि' इत्यादि वाक्य से कर रहे हैं। इस वाक्य में 'हि' का अर्थ चूँकि या क्यों कि है। 'तत्' पद का इस वाक्य में अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य यह अर्थ किया जाता है। इस वाक्य में आये 'न' पद

---

१. अव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यं रूपं यस्याः सा व्याप्तिः, अव्यभिचरितत्व–शब्दप्रतिपाद्यरूपा।

२. मथुरानाथ ने 'न तावत्' आदि मूल ग्रन्थ के सन्दर्भ में मूलस्थ 'तावत्' पद के सम्बन्ध में यह कहा है कि इस पद का कोई अर्थ विवक्षित नहीं है, किन्तु यह वाक्य की शोभा का आधायक है। उनके कहने का आशय है कि 'तावत्' शब्द का प्रयोग न कर केवल 'नाऽव्यभिचरितत्वम्' कहने पर वाक्य के उच्चारण में चारुता और सुनने में सौष्ठव नहीं आता है, क्यों कि उच्चारण करते समय तत्काल ही संयुक्त वर्ण का प्रयोग होने से उच्चारण अचारु हो जाता है और जब उच्चारण अचारु हुआ तो अचारु उच्चारण से उत्पन्न वाक्य के श्रवण का समीचीन न होना स्वाभाविक है। अतः 'तावत्' पद का प्रयोग कर मूलकार ने वाक्य की मनोहारिता और श्रवण की सुखप्रदता का सम्पादन कर दिया है। – माथुरी पञ्चलक्षणी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, हिन्दी व्याख्या, व्याख्याकार–आचार्य बदरीनाथ शुक्ल, पृ० ११–१२

का अग्रिम वाक्यों में समागत व्याप्ति के सभी लक्षणों से सम्बन्ध अपेक्षित है।

इस प्रकार, व्याप्ति, चूँकि साध्याऽभाववदवृत्तित्व आदि रूप अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली नहीं है, अतः अव्यभिचरितत्व शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली भी नहीं है यह समग्र वाक्य का अर्थ पर्यवसित अर्थात् निर्णीत होता है। किसी वस्तु के सभी विशेष के अभाव का कूट अर्थात् समूह यदि कहीं हो तो उस वस्तु का सामान्याभाव वहाँ अवश्य होता है। इसी लिए विशेषाभाव कूट की सामान्याभावहेतुता प्रसिद्ध ही है। यही कारण है कि चिन्तामणि में दो नञ् का उपादान निरर्थक नहीं है।

अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य व्याप्ति नहीं है। क्यों कि अव्यभिचरितत्व विशेष उपर्युक्त व्याप्ति के पाँच लक्षण ही हैं तथा व्याप्ति; इन पाँच लक्षणों से अर्थात् साध्याभाववदवृत्तित्व रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली नहीं है, साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्व रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली नहीं है, साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्य रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली नहीं है, सकल–साध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्व रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली नहीं है तथा साध्यवदन्यावृत्तित्व रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप वाली भी नहीं है।

मथुरानाथ की पङ्क्तियों के आधार पर यहाँ पक्ष–व्याप्ति है। साध्य–अव्यभिचरितत्व–पद–प्रतिपाद्य–स्वरूप का भेद है और हेतु, साध्या–भाववदवृत्तित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप का भेद, साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप का भेद, साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्य–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप का भेद, सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्व–रूप

अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप का भेद तथा साध्यवदन्यावृत्तित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य स्वरूप का जो भेद इनका कूट अर्थात् समूह है।

यदि मथुरानाथ की पङ्क्तियों का आशय समझ कर यहाँ पक्ष साध्य एवं हेतु का निर्धारण करें तो इस अनुमिति में पक्ष–व्याप्तिस्वरूप होगा। साध्य–अव्यभिचरितत्व–पद–प्रतिपाद्य का भेद होगा तथा हेतु, साध्याभाव–वदवृत्तित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य का भेद, साध्यवद्भिन्न–साध्याभाववदवृत्तित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य का भेद, साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्य–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य का भेद, सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य का भेद तथा साध्यवदन्यावृत्तित्व–रूप अव्यभिचरितत्व–शब्द से प्रतिपाद्य का जो भेद इनका कूट अर्थात् समूह होगा।

'साध्याभाववदवृत्तित्व' आदि पदों से प्रतिपाद्य व्याप्ति का स्वरूप क्यों नहीं है? इस प्रश्न का समाधान देते हुए गङ्गेश उपाध्याय ने अपनी चिन्तामणि में स्पष्ट कहा है कि पाँचो व्याप्ति के लक्षण केवलान्वयि साध्य वाले स्थल में अव्याप्ति दोष[१] से ग्रस्त हो जाते हैं, इस लिए अव्यभिचरितत्व–विशेष रूप

---

१. व्याप्ति में, (पक्ष में) इन पाँच लक्षणों में प्रत्येक के, मिलित–भेद (भेद–कूट) रूप हेतु को सिद्ध करने के लिए मूलकार ने 'केवलान्वयिन्यभावात्' इस ग्रन्थ से केवलान्वयि साध्यक हेतु में प्रत्येक लक्षण के अभाव को हेतु बताया है। इस प्रकार उक्त पूरे ग्रन्थ का तात्पर्य यह है कि व्याप्ति का स्वरूप अव्यभिचरितत्व पद के प्रतिपाद्य अर्थ से भिन्न है, क्यों कि अव्यभिचरितत्व पद के साध्याभाववदवृत्तित्व आदि पाँच ही अर्थ सम्भव हैं और व्याप्ति का स्वरूप उन पाँचों में प्रत्येक से भिन्न है क्यों कि उक्त पाँचों ही लक्षणों का केवलान्वयि साध्यक हेतु में–प्रमेयत्वादि साध्यक वाच्यत्वादि हेतु में अभाव–अव्याप्ति है, वह इस लिए कि अव्यभिचरितत्व पद के उक्त पाँचों प्रतिपाद्यों में किसी में साध्याभाव और किसी में साध्य–वद्भेद का प्रवेश होने से केवलान्वयिसाध्यक स्थल में साध्याभाव और

इन पाँचों लक्षणों से प्रतिपाद्य व्याप्ति का स्वरूप[1] नहीं है अत: अव्यभिचरितत्व–सामान्य पद से प्रतिपाद्य भी व्याप्ति का स्वरूप नहीं है यह सहज ही सिद्ध हो जाता है। इस निष्कर्ष तक पहुँचने में, सामान्याभाव को सिद्ध करने में विशेषाभाव समूह की प्रसिद्ध हेतुता सहायक सिद्ध होती है।

पूर्वोक्त चिन्तामणि वाक्य में दो नञ् अर्थात् दो बार न पद का उपादान भी इसी कारण निरर्थक नहीं सिद्ध होता है। क्यों कि 'न तावदव्यभिचरितत्वम्'

साध्यवद्भेद से घटित लक्षण अप्रसिद्ध है। उक्त लक्षणों के भेदपञ्चक से व्याप्तिस्वरूप में अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्य के भेद की सिद्धि में अप्रयोजकत्व की शङ्का नहीं की जा सकती क्यों कि विशेषाभावकूट में सामान्याभाव की साधकता प्रसिद्ध है। यत: किसी भी विशेषाभावकूट को यदि सामान्याभाव का व्यभिचारी माना जायेगा तो 'य: यदीयविशेषाभावकूटवान् स तत् सामान्याभाववान्–जो जिस वस्तु के विशेषाभावकूट का आश्रय होता है वह उसके सामान्याभाव का भी आश्रय होता है' इस सर्वसम्मत व्याप्ति का लोप हो जायेगा। अत: केवलान्वयि–साध्यक सद् हेतु में साध्याभाववदवृत्तित्व आदि लक्षणों के अव्याप्त होने से, व्याप्ति को, जो केवलान्वयिसाध्यक सद् हेतु में भी रहती है, उसे साध्याभाववदवृत्तित्व आदि प्रत्येक लक्षण से भिन्न होना अनिवार्य है, और व्याप्ति जब साध्याभाववदवृत्तित्व आदि सभी अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यों से भिन्न है तो उसका अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यसामान्य से भिन्न होना अनिवार्य है क्योंकि उक्त पाँचों लक्षणों से अतिरिक्त अव्यभिचरितत्व पद से प्रतिपाद्य सम्भव नहीं है। – माथुरी पञ्चलक्षणी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, हिन्दी व्याख्या, व्याख्याकार–आचार्य बदरीनाथ शुक्ल, पृ० १२–१३

१. व्याप्ति पञ्चक में व्याप्ति के स्वरूप का निरूपण कर्त्तव्य है, फलत: यहाँ प्रतिपादित सभी लक्षण व्याप्ति के स्वरूप–लक्षण हैं, तटस्थ–लक्षण नहीं हैं। व्याप्ति के स्वरूप–लक्षण जहाँ होते हैं, उसे व्याप्य या सद्धेतु कहते हैं। इस प्रकार ये सभी लक्षण व्याप्य या सद्धेतु के तटस्थ–लक्षण के रूप में भी न्यायशास्त्र में माने गये हैं।

इस वाक्य में विद्यमान न पद का अर्थ सामान्याभाव[१] माना जाता है तथा 'तद्भिन्न साध्याभाववदवृत्तित्वम्' इस वाक्य में विद्यमान न पद का अर्थ विशेषाभाव[२] मान लिया जाता है।

माथुरी

'साध्याभाववदवृत्तित्वम्' इति। 'वृत्तम्' वृत्तिः, भावे निष्ठाप्रत्ययात्। वृत्तस्याऽभावोऽवृत्तम्, वृत्त्यभाव इति यावत्। साध्याऽभाववतोऽवृत्तं साध्याभाववदवृत्तम्, साध्याभाववद्वृत्त्यभाव इति यावत्। तद् यत्रास्ति स साध्याभाववदवृत्ती, मत्त्वर्थीयेन्– प्रत्ययात्। तस्य भावः साध्याभाववदवृत्तित्वम्। तथा च साध्याभाववद्वृत्त्यभाववत्त्वमिति फलितमिति प्राञ्चः।

चिन्तामणि ग्रन्थ में निर्दिष्ट प्रथम अव्यभिचरितत्व– साध्याभाववदवृत्तित्व का विश्लेषण करते हुए मथुरानाथ तर्कवागीश, वर्त्तन अर्थ वाले 'वृतु वर्त्तने' धातु से भाव में[३] निष्ठा प्रत्यय–'क्त'[४] करने के बाद 'वृत्त' शब्द को व्युत्पन्न करते हैं जिसका अर्थ वृत्ति मानते हैं। इस प्रकार वृत्त के अभाव अर्थ को बताने वाले नञ् पद के साथ वृत्त शब्द का अव्ययीभाव समास करने पर अवृत्त शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ वृत्यभाव होता है। पुनः साध्या– भाववत् शब्द का इस अवृत्त शब्द के साथ साध्याभाववतः अवृत्तम् इस अर्थ को बताने के लिए अव्ययीभावान्त तत्पुरुष

---

१. यहाँ अभाव का तात्पर्य अन्योन्याभाव अर्थात् भेद से है।
२. यहाँ भी अभाव का तात्पर्य अन्योन्याभाव अर्थात् भेद से ही है।
३. धात्वर्थ के सन्दर्भ में। भाव शब्द का अर्थ धातु का अर्थ ही होता है।
४. क्त–क्तवतू निष्ठा

समास किया जाता है जिसका अर्थ साध्याभाववद्वृत्यभाव के रूप में प्रसिद्ध होता है। साध्याभाववत् निरूपित अवृत्त जहाँ है इस अर्थ में मत्त्वर्थीय 'इन्' प्रत्यय करने के उपरान्त साध्या–भाववदवृत्ती शब्द निष्पन्न होता है। साध्याभाववदवृत्ती का भाव साध्याभाववदवृत्तित्व माना जाता है। इस तरह सम्पूर्ण प्रथम लक्षण का प्राचीन नैयायिकों के मत में अर्थ–साध्याभाव–वद्वृत्यभाववत्त्व रूप में प्रतिफलित होता है।

पाँच प्रकार के जो अव्यभिचरितत्व विशेष बताए गये हैं उनमें प्रथम अव्यभिचरितत्व विशेष 'साध्याभाववदवृत्तित्व' है। इस वाक्य का अर्थ–साध्याभाव के अधिकरण में न रहना' किया जा सकता है। 'वृतु वर्त्तने' धातु से भावार्थक निष्ठासंज्ञक 'क्त' प्रत्यय करने पर 'वृत्तम् यह शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ वृत्ति या रहना होता है। भाव का अर्थ व्याकरण के अनुसार धातु का अर्थ ही होता है। फलत: 'वृत्' धातु का अर्थ और भाव अर्थ में निष्ठा प्रत्यय करने पर निष्पन्न 'वृत्तम्' इस पद का अर्थ वर्त्तन ही है। वर्त्तन का अर्थ वृत्ति या रहना यह स्पष्ट हो जाता है। वृत्ति के अभाव को अवृत्ति कहेंगे, जिसका अर्थ वृत्ति का अभाव होगा, क्योंकि वृत्त और वृत्ति समानार्थक हैं। साध्याभाववत् में जो अवृत्त होगा उसको साध्याभाववदवृत्त कहेंगे, अर्थात् साध्याभावाधिकरण में न रहने वाला कहेंगे। 'साध्याभाववदवृत्त' का अर्थ साध्याभाववद्वृत्यभाव भी होता है। साध्याभाववद्वृत्यभाव जहाँ रहेगा उसे साध्याभाववदवृत्ती कहेंगे, क्यों कि साध्याभाववदवृत्ति पद के बाद मत्त्वर्थीय 'इन्'[१] प्रत्यय करने के अनन्तर यह शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार साध्याभाववदवृत्ती इस पद का अर्थ साध्याभाववद्वृत्यभाव वाला हो जाता है। साध्याभाववदवृत्ती का भाव साध्याभाववदवृत्तित्व माना जाता है। फलत: साध्याभाववदवृत्यभाववत्त्व या साध्याभाववद्वृत्त्यभाव व्याप्ति या अव्यभिचरितत्व विशेष का प्रथम स्वरूप प्राचीन आचार्यों के अनुसार पर्यवसित होता है।

---

१. सध्याभाववदवृत्ति + इन् ।

माथुरी

तदसत्, 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रति–पत्तिकरः' इत्यनुशासनविरोधात्। तत्र कर्मधारयपदस्य बहुव्रीहीतर–समासपरत्वात्, तच्च अगुणवत्त्वमिति साधर्म्यव्याख्यानावसरे गुणप्रकाशरहस्ये तद्दीधितिरहस्ये च स्फुटम्, अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासानिविष्टपदार्थान्तरान्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् यथा भूतले उपकुम्भं भूतले अघटमित्यादौ भूतलवृत्तिघटसमीप– तदत्यन्ता–भावयोः अप्रतीतेः।

यह प्राचीन मत समीचीन नहीं है। 'कर्मधारय समास के बाद मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं होता है, यदि बहुव्रीहि समास उस अर्थ की प्रतिपत्ति कराता हो', इस नियम में 'कर्मधार' पद का अर्थ बहुव्रीहि से भिन्न समास है, यह तथ्य 'अगुणवत्त्वम्' इस प्रकार द्रव्य से भिन्न पदार्थों के साधर्म्य के व्याख्यान के अवसर पर, गुण–प्रकाश पर की गई रहस्य व्याख्या में तथा गुण–प्रकाश पर की गई दीधिति व्याख्या की रहस्य व्याख्या में मथुरानाथ ने स्पष्ट किया है। अव्ययीभाव समास के उत्तर–पदार्थ के साथ इस समास में अनिविष्ट दूसरे पदार्थ का अन्वय भी अव्युत्पन्न माना जाता है। जैसे 'भूतले उपकुम्भम्' 'भूतले अघटम्' इत्यादि उदाहरणों में भूतल–वृत्ति घट–समीप, भूतल–वृत्ति घट के अत्यन्ताभाव की प्रतीति नहीं होती है।

इस प्राचीन मत का खण्डन करते हुए आचार्य मथुरानाथ ने कहा है कि यदि पूर्वोक्त रीति से समास कर साध्याभाववदवृत्तित्व पद का व्याख्यान करेंगे तो 'न कर्माधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः' इस नियम का

विरोध होगा। इस नियम का अर्थ इस प्रकार है–

कर्मधारय समास करने के बाद मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं होता है अर्थात् मतुप् अर्थ बताने वाला प्रत्यय नहीं होता है यदि कर्मधारय समास करने के अनन्तर मत्वर्थीय प्रत्यय करने के बाद जो अर्थ प्राप्त होता है, उस अर्थ का बोध कराने वाला बहुव्रीहि समास सम्भव होता है। इस नियम में निर्दिष्ट कर्मधारय पद बहुव्रीहि से भिन्न समास इस अर्थ का बोध कराने वाला है।

इस प्रकार 'न कर्माधारयान्मत्वर्थीय:' का अर्थ होगा–'बहुव्रीहि से भिन्न समास करने के बाद मत्वर्थीय अर्थात् मतुप् अर्थ को बताने वाला प्रत्यय नहीं होता है, यदि बहुव्रीहि इतर समास से मतुप् अर्थ वाला प्रत्यय करने के बाद जो अर्थ प्राप्त होता है उस अर्थ को बहुव्रीहि समास के द्वारा जान लिया जाय।

मथुरानाथ तर्कवागीश ने इस नियम का उदाहरण के साथ समन्वय; गुणादि षड् पदार्थों के साधर्म्य 'अगुणवत्त्व' की व्याख्या करते हुए, प्रशस्तपादभाष्य की उदयनाचार्य द्वारा विरचित किरणावली व्याख्या की वर्धमान उपाध्याय द्वारा रचित प्रकाश व्याख्या पर निबद्ध अपनी रहस्य नाम की व्याख्या में किया है।

वर्धमान उपाध्याय द्वारा रचित इस प्रकाश व्याख्या पर रघुनाथशिरोमणि द्वारा निबद्ध दीधिति व्याख्या का अपनी दीधिति–रहस्य नामक व्याख्या में विश्लेषण करते हुए भी उपर्युक्त नियम का सोदाहरण समन्वय मथुरानाथ ने स्पष्ट रूप में किया है।

वैशेषिक दर्शन में सात पदार्थ स्वीकार किये गये हैं। इन पदार्थों का यथार्थ ज्ञान करने की दृष्टि से इनके समान एवं विरुद्ध धर्म का ज्ञान अपेक्षित होता है। फलत: इन पदार्थों का क्या समान धर्म है तथा क्या विरुद्ध धर्म है, यह न्याय वैशेषिक दर्शन में विशेष रूप से बतलाया गया है। इस क्रम में गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव इन छ: पदार्थों का समान धर्म 'अगुणवत्त्व' है यह स्पष्ट किया गया है। अर्थात् इन छ: पदार्थों में 'अगुणवत्त्व' समान रूप से रहता है।

अगुणवत्त्व शब्द दो प्रकार का समास करके बनाया जा सकता है। गुणस्य अभावः अगुणम्, तद् यत्रास्ति इति अगुणवान्, तस्य भावः अगुणवत्त्वम्। इस प्रकार अव्ययीभाव समास करने के अनन्तर मत्त्वर्थीय प्रत्यय करने के उपरान्त अगुणवत्त्व शब्द निष्पन्न होता है।

अगुणवत्त्व शब्द को व्युत्पन्न करने का दूसरा प्रकार विद्वानों ने इस प्रकार स्वीकार किया है– गुणाः यत्र विद्यन्ते ते गुणवन्तः, न गुणवन्तः अगुणवन्तः, तेषां भावः अगुणवत्त्वम्। इसका तात्पर्य है कि गुण जहाँ रहते हैं उनको गुणवान् कहा जाता है तथा जो गुणवान् नहीं होते हैं उनको अगुणवान् कहा जाएगा और उनके भावों को ही अगुणवत्त्व कहेंगे।

इन दोनों पक्षों में द्वितीय पक्ष के अनुसार अगुणवत्त्व शब्द का निष्पादन युक्तियुक्त है।[१] क्योंकि इस पक्ष में मात्र बहुव्रीहि समास करने से उस अर्थ का बोध हो जाता है जिस अर्थ का बोध प्रथम पक्ष में बहुव्रीहि से भिन्न अव्ययी भाव समास करने के अनन्तर मतुप् अर्थ बतलाने वाले प्रत्यय को करने के उपरान्त होता है। परिणामतः, 'बहुव्रीहि से भिन्न समास करने के बाद मत्त्वर्थीय प्रत्यय नहीं किया जाता, यदि इस अर्थ का लाभ मात्र बहुव्रीहि करने से हो जाता हो' इस नियम का अपलाप भी नहीं होता है।

इस व्याकरण शास्त्र के नियम के अतिरिक्त एक और नियम है जिसका अपलाप साध्याभाववदवृत्तित्वम् इस लक्षण में अव्ययीभाव समास स्वीकार करने पर होता है। यह द्वितीय नियम इस प्रकार है–

---

१. इन व्याख्याओं में प्रथम व्याख्या की उपेक्षा उक्त ग्रन्थों में यह कह कर की गई है कि इस व्याख्या में 'अगुण' इस अव्ययीभाव समास से मतुप् प्रत्यय करना होता है जो 'न कर्मधारयान् मत्त्वर्थीय' इस अनुशासन से विरुद्ध है। प्रथम व्याख्या की उपेक्षा का यह कारण तभी सम्भव हो सकता है जब अनुशासन में कर्मधारय शब्द को बहुव्रीहीतरसमासपरक माना जाय। **अतः उक्त कारण से प्रथम व्याख्या का परित्याग करने से यह स्पष्ट है कि उक्त अनुशासन में कर्मधारय पद बहुव्रीहीतरसमासपरक है।**

'अव्ययी भाव समास में उत्तर पदार्थ के साथ इस समास में अनिविष्ट किसी दूसरे पदार्थ का अन्वय अव्युत्पन्न माना जाता है' उदाहरण के लिए 'भूतले उपकुम्भम्' एवं 'भूतले अघटम्' इन दो स्थानों में इस नियम की सङ्गति देखी जा सकती है।

इन दोनों उदाहरणों में, कुम्भस्य समीपं उपकुम्भम् इस प्रकार अव्ययीभाव समास करके उपकुम्भ शब्द निष्पन्न होता है तथा घटस्य अभाव: अघटम् इस प्रकार अव्ययीभाव समास करके अघट शब्द की निष्पत्ति की जाती है। इन दोनों उदाहरणों में क्रमानुसार भूतले शब्द के अर्थ भूतल निरूपित वृत्तित्व का अन्वय अव्ययीभाव समास करने के अनन्तर व्युत्पन्न अघट इस समस्त पद के उत्तर पद घट के अर्थ कम्बुग्रीवादिमान् के साथ नहीं होता है, अर्थात् भूतल वृत्ति जो घट उसके समीप, यह अर्थ, भूतले उपकुम्भम्, इस वाक्य से नहीं समझा जाता है। इसी प्रकार अव्ययीभाव समास करने के बाद व्युत्पन्न अघट शब्द के उत्तर पदार्थ घट के साथ भूतल–वृत्तित्व का अन्वय नहीं स्वीकार किया जाता है, अर्थात् भूतल वृत्ति जो घट उसका अत्यन्ताभाव यह अर्थ 'भूतले अघटम्' इस वाक्य के अर्थ के रूप में प्रामाणिकों द्वारा मान्य नहीं है।

माथुरी

एतेन वृत्तेरभावोऽवृत्तीत्यव्ययीभावानन्तरम् साध्याभाव–वतोऽवृत्तिः यत्रेति बहुव्रीहिरित्यपि प्रत्युक्तम्, वृत्तौ साध्याभाव–वतोऽनन्वयापत्तेः, अव्ययीभाव–समासस्याव्ययतया तेन समं समासान्तरासम्भवाच्च, नञुपाध्यादिरूपाव्यय–विशेषाणामेव समस्यमानत्वेन परिगणितत्वात्।

इस नियम के अनुसार वृत्ते: अभाव: अवृत्ति: यह अव्ययीभाव समास करने के अनन्तर, साध्याभाववत: अवृत्ति: यत्र इस प्रकार बहुव्रीहि समास कर के साध्याभाववदवृत्तित्व का निर्वचन भी

मान्य नहीं होता है, क्यों कि अव्ययीभाव समास करने के बाद निष्पन्न अवृत्ति पद के उत्तर पदार्थ वृत्ति के साथ इस समास में अनिविष्ट साध्याभाववत् पदार्थ का अन्वय उपर्युक्त नियम के अनुसार सम्भव नहीं है।

अव्ययी भाव समास के अव्यय होने के कारण, अव्ययीभाव समास करने के अनन्तर व्युत्पन्न पद के साथ दूसरा समास भी नहीं किया जा सकता है, क्यों कि नञ्, उप, अधि आदि परिगणित अव्यय विशेष ही दूसरे पद के साथ समस्त होते हैं ऐसी विद्वानों की मान्यता है।

माथुरी

वस्तुतस्तु 'साध्याभाववतो न वृत्तिः यत्र' इति त्रिपद–व्यधिकरणबहुव्रीह्युत्तरं त्वप्रत्ययः, साध्याभाववत इत्यत्र निरूपितत्वं षष्ठ्यर्थः, अन्वयश्चास्य वृत्तौ। तथा च साध्याभावाधि–करणनिरूपितवृत्त्यभाववत्त्वम् अव्यभिचरितत्वमिति फलितम्। न च व्यधिकरणबहुव्रीहिः सर्वत्र न साधुरिति वाच्यम्, अयं हेतुः साध्याभाववदवृत्तिरित्यादौ व्यधिकरणबहुव्रीहिं विना गत्यन्तराभावेनाऽत्रापि व्यधिकरणबहुव्रीहेः साधुत्वात्।

सिद्धान्त रूप में 'साध्याभाववतः न वृत्तिः यत्र' इस प्रकार तीन पद वाली व्यधिकरण बहुव्रीहि समास करने के उपरान्त त्व प्रत्यय कर के साध्याभाववदवृत्तित्व शब्द को निष्पन्न करना ही युक्तियुक्त है। यहाँ पर साध्याभाववतः इस पद में वर्त्तमान जो षष्ठी विभक्ति है, उसका निरूपितत्व अर्थ स्वीकार करते हैं। इस

निरूपितत्व अर्थ का अन्वय वृत्ति पद के अर्थ में करते हैं। इस तरह 'साध्याभाववदवृत्तित्व' इस लक्षण वाक्य का अर्थ 'साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्त्यभाव' ही निष्कर्ष रूप में प्राप्त होता है। और यह 'साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्त्यभाववत्त्व' ही 'अव्यभिचरितत्व' पद का अर्थ है, यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है।

यहाँ यह प्रश्न नहीं करना चाहिए कि, व्यधिकरण बहुव्रीहि हर जगह मान्य नहीं है, फलतः इस लक्षण—वाक्य में भी व्यधिकरणबहुव्रीहि स्वीकार करना उपयुक्त नहीं है, क्यों कि यह हेतु 'साध्याभाववदवृत्ती' है यह व्यवहार व्यधिकरण बहुव्रीहि के बिना किसी और प्रकार से सम्भव नहीं हो सकता, अतः इस विशेष स्थल में भी व्यधिकरण—बहुव्रीहि को उपयुक्त मानना ही श्रेयस्कर होता है।

अब तक की चर्चा से स्पष्ट हो जाता कि 'साध्याभावाधिकरण—निरूपितवृत्त्यभाववत्त्व' का अर्थ साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्त्यभाव होता है। यद्यपि मूल ग्रन्थ के अनुसार व्याप्ति का स्वरूप लक्षण साध्याभावाधिकरण—निरूपितवृत्त्यभाव है तथापि व्याप्ति का लक्षण 'साध्याभावाधिकरण—निरूपितवृत्तित्वाभाव' है ऐसा परम्परा से अध्ययन अध्यापन के क्रम में मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया जाता है।

वास्तव में सूक्ष्मता से विचार करें तो साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्त्यभाव या साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आरम्भ में यह बताया जा चुका है कि वृत्ति शब्द का अर्थ वर्त्तन या रहना होता है। साध्याभावाधिकरण में जो वस्तु रहती है वह वस्तु 'रहना' इस क्रिया का आश्रय होती है अर्थात् साध्याभावाधिकरणवृत्ती होती है। साध्याभावाधिकरण में

जो वस्तु है, उसमें रहने वाली वर्त्तन–क्रिया, साध्याभावाधिकरणवृत्ती में है, फलत: साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्ती का भाव वृत्तित्व भी यह वर्त्तन–क्रिया ही होगी।

इस प्रकार यद्यपि साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्यभाव एवं साध्या–भावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव में कोई भेद नहीं है फिर भी साध्याभावाधि–करणनिरूपित वृत्तित्वाभाव व्याप्ति का स्वरूपलक्षण है यह कहने में एवं समझने में सुविधा होती है यही कारण है कि शास्त्रार्थ एवं अध्ययन अध्यापन के सन्दर्भ में व्याप्ति का लक्षण 'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव' के रूप में ही प्रचलित है। प्रथम पक्ष में, साध्याभावाधिकरण मे रहना कहकर हम सीधे साध्याभावाधिकरण में रहने वाली वस्तु में विद्यमान क्रिया का सङ्ग्रह करते हैं जो समझने एवं समझाने की दृष्टि से कठिन होता है। द्वितीय पक्ष में, साध्याभावाधिकरण में रहने वाली वस्तु का 'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्ति शब्द से ग्रहण कर भावार्थक 'त्व' पद से रहना क्रिया का सङ्ग्रह अनायास ही कर लेते हैं जिससे विषय के अवबोध में सुविधा होती है, यह सुस्पष्ट है।

माथुरी

साध्याभावाधिकरणवृत्त्यभावश्च तादृशवृत्तित्वसामान्याभावो[१] बोध्य:। तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमाभाववज्जलह्रदादिवृत्त्य–भावस्य धूमाभाववद्वृत्तित्वजलत्वोभयत्वावच्छिन्नाभावस्य च वह्नौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्ति:।

'साध्याभाववदवृत्तित्व' इस लक्षण वाक्य का अर्थ 'साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्त्यभाव' ही निष्कर्ष रूप में प्राप्त

---

१. तदृशवृत्तिसामान्याभावो बोध्य:। – माथुरी पञ्चलक्षणी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, हिन्दी व्याख्या, व्याख्याकार–आचार्य बदरीनाथ शुक्ल, पृ० १२–१३

होता है और यह साध्याभावाधिकरणवृत्ति का अभाव साध्याभावा धिकरणनिरूपितवृत्तित्व का सामान्याभाव मानना चाहिए। ऐसा मानने से पर्वतः, धूमवान्, वह्नेः, इस प्रकार के असद्धेतु वाले स्थल में, धूमाभाववत् जलह्रद आदि वृत्ति अर्थात् वृत्तित्व के अभाव के एवं धूमाभाववत् वृत्तित्व–जलत्व उभयत्व से अवच्छिन्न अभाव के, असद्धेतु–वह्नि में रहने पर भी अतिव्याप्ति नामक लक्षण–दोष नहीं होता है।

पाँच अव्यभिचरितत्व विशेषों में प्रथम अव्यभिचरितत्वविशेष साध्याभावाधिकरणवृत्त्यभाव अर्थात् 'साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव' है। यह व्याप्ति का स्वरूप लक्षण है तथा व्याप्ति से युक्त सद्धेतु या व्याप्य का तटस्थ लक्षण[१] है। प्रस्तुत ग्रन्थ में व्याप्य के तटस्थ लक्षण के रूप में

---

१. लक्षण से किसी भी वस्तु को पहचानते हैं। किसी वस्तु का स्वरूप ही उस वस्तु का स्वरूप लक्षण होता है। तटस्थ लक्षण किसी वस्तु में रहने वाला वह असाधारण धर्म होता है जिससे हम उस वस्तु की पहचान नियमित रूप में करते हैं। इस प्रकार स्वरूप होने के साथ–साथ जो उस वस्तु का व्यावर्त्तक भी होता है उसे स्वरूप लक्षण कहते हैं दूसरे शब्दों में वस्तु में नियमित रूप से विद्यमान होते हुए जो वस्तु को अन्य वस्तुओं से अलग करता है उसे स्वरूप लक्षण कहते हैं। तटस्थ लक्षण वस्तु का वह असाधारण धर्म होता है जो उस वस्तु में सदा न रह कर भी उस वस्तु को और वस्तुओं से अलग सिद्ध करता है।

उदाहरणार्थ पृथ्वी का स्वरूपलक्षण पृथ्वीत्व है जो पृथ्वी को छोड़ कर कभी भी कहीं नहीं रहता है तथा पृथ्वी में हर स्थिति में रहता है। पृथ्वी का तटस्थ लक्षण गन्ध माना गया है। यह गन्ध पृथ्वी को छोड़ कर कभी भी कहीं नहीं रहता है परन्तु पृथ्वी में हर स्थिति में नहीं रहता है, जब पृथ्वी उत्पत्ति की स्थिति में होती है तब पहले क्षण में बिना किसी गुण के ही होती है। हम गन्ध के आधार पर भी पृथ्वी को अन्य पदार्थों से अलग करते हैं अतः 'गन्ध' पृथ्वी का तटस्थ लक्षण सिद्ध होता है।

इसकी विवेचना की गई है। इसी लिए कभी इस लक्षण में असम्भव तो कभी अव्याप्ति तो कभी अतिव्याप्ति दोष का निर्देश विभिन्न हेतुओं के सन्दर्भ में मिलता है। यद्यपि कहा यही जाता है कि व्याप्ति के लक्षण में अतिव्याप्ति,अव्याप्ति या असम्भव दोष[१] है क्यों कि यह लक्षण असद्–हेतु में है, या किसी सद्–हेतु में नहीं है, अथवा किसी भी सद्–हेतु में नहीं है, तथापि कथन का तात्पर्य यही समझना चाहिए कि व्याप्य के लक्षण में उपर्युक्त दोष हैं।

गन्ध पृथ्वी में उत्पत्ति की अवस्था में नहीं होता है यह तथ्य **' उत्पन्नं द्रव्यं क्षणमगुणं निष्क्रियं च तिष्ठति'** पैदा हुआ कोई भी द्रव्य प्रथम क्षण में बिना किसी गुण एवं बिना किसी क्रिया के होता है, इस दार्शनिक मान्यता के आधार पर सिद्ध होता है।

यह नियम इस लिए मानना पड़ता है क्यों कि कोई भी कारण कार्य के पूर्व में नियमित रूप में अवश्य रहता है, तथा गुणों एवं क्रियाओं का कारण द्रव्य माना गया है अतः द्रव्य को गुण एवं क्रिया से पहले क्षणमें नियमित रूप से अवश्य होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब उपर्युक्त नियम के अनुसार उत्पन्न किसी भी द्रव्य को प्रथम क्षण में निर्गुण एवं निष्क्रिय माना जाय।

१. किसी लक्षण में अव्याप्ति तब होती है जब कोई लक्षण, जिसका किया जाय उन्हीं में से कुछ में रहे एवं कुछ में न रहे। इसी लिए अव्याप्ति का लक्षण **'लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम्'** इस प्रकार शास्त्रों में प्राप्त होता है। लक्ष्य के किसी एक देश या भाग में लक्षण का न होना ही अव्याप्ति है।

किसी लक्षण में अतिव्याप्ति तब होती है जब कोई लक्षण, जिसका किया जाय उसमें सर्वत्र रहे एवं जिसका वह लक्षण नहीं है उसमें भी रहे। इसी लिए अतिव्याप्ति का लक्षण **'लक्ष्यवृत्तित्वे सति अलक्ष्यवृत्तित्वम्'** इस प्रकार शास्त्रों में प्राप्त होता है। लक्ष्य में सर्वत्र रहता हुआ जब लक्षण अलक्ष्य में भी रहता है तब अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त होता है।

किसी लक्षण में असम्भव दोष तब होता है जब कोई लक्षण, जिसका किया जाय उसी में कहीं भी न रहे। इसी लिए असम्भव का लक्षण **'लक्ष्यमात्रावृत्तित्वम्'** इस प्रकार शास्त्रों में प्राप्त होता है।

व्याप्ति के इस लक्षण का समन्वय सद्धेतु में अपेक्षित है तथा असद्धेतु में इसका समन्वय अभीष्ट नहीं है, साथ ही इस लक्षण को ऐसा होना चाहिए कि यह व्याप्य या सद्धेतु में सर्वथा असम्भव या न रहने वाला न हो। ऐसी स्थिति में ही हम इस लक्षण को अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असम्भव रूप तीन लक्षण के दोषों से मुक्त मान सकते हैं। किसी भी लक्षण में इन दोषों का राहित्य आवश्यक रूप में अपेक्षित होता है।

जब भी किसी का कोई लक्षण किया जाता है तब सर्व प्रथम उसका किसी लक्ष्य में समन्वय किया जाता है। ऐसा करने से यह सिद्ध हो जाता है कि इस लक्षण का किसी एक लक्ष्य में समन्वय हो जाने से, यहाँ असम्भव नामक लक्षण–दोष नहीं है साथ ही लक्ष्य में लक्षण के समन्वय होने से अव्याप्ति भी नहीं है।[1] इसके अनन्तर अलक्ष्य में लक्षण का समन्वय नहीं हो रहा है यह भी बताने की आप्त परम्परा है जिससे लक्षण में अतिव्याप्ति–दोष का न होना भी सिद्ध होता है।

जन सामान्य भी जब किसी वस्तु को पहचानने के क्रम में उस वस्तु का कोई विशेष या असाधारण धर्म बताता है तब वह अवश्य सहज रूप में

---

१. एक देश में लक्षण जा रहा है ऐसा सिद्ध होने पर लक्षण में अव्याप्ति नहीं है यह कैसे समझा जा सकता है। एक देश में लक्षण है यह कहने पर लक्षण में अव्याप्ति दोष है यह भी तो कहा जा सकता है? इस प्रकार की आशङ्का नहीं करनी चाहिए।
लक्षण एक देश में है यह कहने से , एक देश में ही है अन्य देश में नहीं है यह भाव यदि निकलता तो अव्याप्ति है यह शङ्का सम्भव होती, पर इस वाक्य से ऐसा आशय कथमपि नहीं निकलता है।
वायु सर्वत्र व्याप्त है, यह शाश्वत तथ्य है । ऐसी स्थिति में जब हम कहते हैं कि इस कक्ष में वायु है, तब इस कथन का तात्पर्य यह कथमपि नहीं निकलता है कि अन्य स्थान या कक्षों में वायु नहीं है या इसी कक्ष में वायु है। फलतः लक्ष्य के एक देश में लक्षण का समन्वय करने से लक्षण में अव्याप्ति नहीं है यह सङ्केत भी प्राप्त होता ही है।

यह सिद्ध करता ही है कि यह विशेष उस वस्तु में है तथा अन्य वस्तुओं में वह विशेष या असाधारण धर्म नहीं है। ऐसा बताकर जन सामान्य भी यही स्पष्ट करता है कि उसके द्वारा बताई गई पहचान यथार्थ एवं दोष शून्य है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में भी व्याप्ति के लक्षण का समन्वय सद्धेतु में हो रहा है तथा असद्धेतु में नहीं हो रहा है यह सुनिश्चित करना नितान्त अपेक्षित है। पर्वत, आग वाला है। धूआँ होने के कारण। इस प्रकार जब कोई पर्वत पर आग का अनुमान धूएँ को हेतु बना कर करता है तब यहाँ धूएँ को सद्धेतु माना जाता है।

सद्धेतु धूएँ में व्याप्ति के प्रथम लक्षण का समन्वय इस प्रकार होता है— उपर्युक्त स्थल में साध्य आग है। साध्य का अभाव आग का अभाव है। साध्य के अभाव का अर्थात् आग के अभाव का अधिकरण धूएँ का अधिकरण नहीं होता है क्यों कि तालाब आदि में जहाँ भी आग का अभाव मिलता है वहाँ सभी जगह धूआँ नहीं होता है। इस प्रकार आग के अभाव के अधिकरण तालाब आदि में धूआँ वृत्ति नहीं होता है अर्थात् अवृत्ति होता है फलत: हेतु धूएँ में आग के अभाव के अधिकरण तालाब आदि से निरूपित अवृत्तित्व या वृत्तित्व का अभाव निराबाध सिद्ध हो जाता है। फलस्वरूप सद्धेतु में व्याप्ति के लक्षण का समन्वय हो जाने से व्याप्ति के लक्षण में असम्भव एवं अव्याप्ति दोष का न होना सिद्ध हो जाता है।

'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव' यह व्याप्ति का प्रथम लक्षण असद्धेतु वाले—स्थल के असद्धेतु में समन्वित नहीं होता है। पर्वत, धूम वाला है। आग होने के कारण। इस प्रकार जब कोई पर्वत में धूएँ का अनुमान आग को हेतु बना कर करता है तब यहाँ आग को असद्धेतु माना जाता है। क्यों कि 'जहाँ—जहाँ आग है वहाँ—वहाँ धूआँ है' इस प्रकार धूएँ के साथ रहने का नियम आग में नहीं देखा जाता है। आग तो रसोई घर, चौराहे एवं गोशाला में जैसे उपलब्ध होती है उसी तरह तपते हुए लोहे के गोले में भी रहती ही है परन्तु आग से दहकते लोहे के गोले में आग तो होती है पर वहाँ धूआँ नहीं होता है। यही कारण है कि धूएँ के साथ रहने का नियम आग में नहीं बन पाता

है।

असद्धेतु आग में व्याप्ति के प्रथम लक्षण का समन्वय इस प्रकार नहीं होता है— उपर्युक्त स्थल में साध्य धूआँ है। साध्य का अभाव धूएँ का अभाव है। साध्य के अभाव का अर्थात् धूएँ के अभाव का अधिकरण तलाब, नदी, कूप आदि की तरह हेतु—आग का अधिकरण दहकता हुआ आग का गोला भी होता है । इस प्रकार साध्य—धूएँ, के अभाव का अधिकरण तपता हुआ लोहे का गोला, गैस एवं विद्युत् आदि से उत्पन्न आग वाला चूल्हा आदि होगा। इन साध्य के अभाव के अधिकरणों में रहने वाला अर्थात् वृत्ति ही हेतु—आग हो जाता है फलत: वृत्तित्व अर्थात् रहना—क्रिया, हेतु—आग में सुनिश्चित हो जाती है, न रहना अर्थात् वृत्तित्व का अभाव या अवृत्तित्व स्वरूप व्याप्ति का लक्षण असद्धेतु आग में नहीं होता है। इस प्रकार हेतु आग में, धूएँ के अभाव के अधिकरण—तपते लोहे के गोले आदि से निरूपित वृत्तित्व के ही होने से वृत्तित्व का अभाव नहीं सिद्ध हो पाता है। अन्तत: असद्धेतु में व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न हो पाने से, व्याप्ति के लक्षण में अतिव्याप्ति दोष का न होना भी स्वत: सिद्ध हो जाता है।

इतनी चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि व्याप्ति का यह प्रथम लक्षण अव्याप्ति अतिव्याप्ति एवं असम्भव दोषों से विहीन होने के कारण निर्दुष्ट एवं उपादेय है।

व्याप्ति का जो प्रथम—**लक्षण 'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व का अभाव'** है वह **'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व का सामान्याभाव'** मानना चाहिए। **'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व नहीं है'** इस प्रकार की प्रतीति के आधार पर जो अभाव सिद्ध होता है वही साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व का सामान्याभाव होता है। कल्पना कीजिए कि उपर्युक्त स्थल में साध्याभावाधि— करणनिरूपितवृत्तित्व मात्र चार प्रकार के हैं, धूएँ के अभाव के अधिकरण तालाब निरूपित वृत्तित्व, धूएँ के अभाव के अधिकरण नदी निरूपित वृत्तित्व, धूएँ के अभाव के अधिकरण कूप निरूपित वृत्तित्व एवं धूएँ के अभाव के अधिकरण तपते लोहे के गोले से निरूपित वृत्तित्व, आरम्भ के तीन वृत्तित्व

के असद्धेतु आग में न होने पर भी अन्तिम तपते लोहे के गोले से निरूपित वृत्तित्व के आग में होने के कारण, आग में साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व का सामान्याभाव है अर्थात् आग में 'साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व नहीं है' यह नहीं कह सकते हैं।

यदि व्याप्ति के लक्षण में प्रविष्ट वृत्तित्वाभाव वृत्तित्वसामान्याभाव के रूप में ग्राह्य है यह नहीं मानेंगे तो पर्वत: धूमवान् वह्नेः इस असद्धेतुक स्थल के असद्धेतु वह्नि में धूमाभावाधिकरण—जलह्रद निरूपित वृत्तित्व का अभाव होने से लक्षण समन्वय हो जाता है, फलस्वरूप अतिव्याप्तिदोष की आपत्ति होती है।

यद्यपि धूमाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व उपर्युक्त असद्धेतु—वह्नि में है या नहीं? यह प्रश्न होने पर हर व्यक्ति उत्तर यही देता है कि उपर्युक्त असद्धेतु—वह्नि में धूमाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व है, क्यों कि धूम के अभाव के अधिकरण तपते हुए लोहे के गोले में आग वृत्ति है यह हम सब को विज्ञात है।

अब यदि फिर प्रश्न हो कि असद्धेतु—वह्नि में धूमाभावाधि—करणनिरूपितवृत्तित्व के होने पर भी जलत्व है कि नहीं? तो स्पष्ट उत्तर होगा कि असद्धेतु—वह्नि में जलत्व नहीं है। इस प्रकार असद्धेतु—वह्नि में धूमा—भावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व है, जलत्व नहीं है यह सिद्ध हो जाता है।

पुन: जब यहाँ प्रश्न होता है कि उपर्युक्त असद्धेतु—वह्नि में धूमाभावा—धिकरणनिरूपितवृत्तित्व जलत्व दोनों हैं कि नहीं? तो सामान्य व्यक्ति का भी यही उत्तर होता है कि असद्धेतु—वह्नि में धूमाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व के होने पर भी जलत्व के न होने से धूमाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व जलत्व दोनों नहीं हैं।

किसी स्थान पर एक वस्तु के होने पर भी दूसरी वस्तु के न होने पर उस जगह दोनों वस्तु नहीं हैं[१] यही जन सामान्य का व्यवहार होता है। इस आप्त व्यवहार के आधार पर ही जनसामान्य उपर्युक्त उत्तर देता है।

१. एक सत्त्वेऽपि द्वयं नास्ति।

इस प्रकार यदि व्याप्ति के लक्षण में प्रविष्ट वृत्तित्वाभाव वृत्तित्वसामान्याभाव के रूप में ग्राह्य है यह नहीं मानेंगे तो पर्वतः धूमवान् वह्नेः इस असद्धेतुक स्थल के असद्धेतु वह्नि में धूमाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वजलत्वोभयाभाव रूप धूमाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव होने से भी असद्धेतु वह्नि में अतिव्याप्ति की आपत्ति सुस्थिर हो जाती है।

आइए इसी तथ्य को एक लौकिक उदाहरण से समझने का भी प्रयास किया जाय। यदि हम आपसे कहें कि आपके पास रूपये नहीं हैं। तो इस कथन का तात्पर्य होगा कि आप के पास एक रूपया भी नहीं है। दूसरे शब्दों में रूपये का सामान्याभाव है।

यदि किसी के पास दो रूपये का नोट न हो, पाँच रूपये का नोट न हो, दस रूपये का नोट न हो, बीस रूपये का नोट न हो, पचास रूपये का नोट न हो, सौ रूपये का नोट न हो, पाँच सौ रूपये का नोट न हो तथा एक हजार रूपये का नोट न हो, पर एक रूपये का नोट हो, तो उसके पास 'रूपया नहीं है' यह कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं कहता है। क्यों कि इस व्यक्ति के पास एक रूपये के होने के कारण रूपये का सामान्याभाव है यह नहीं कहा जा सकता है।

ठीक इसी प्रकार असद्धेतु आग में, आग के अभाव के अधिकरण तपते लोहे के गोले से निरूपित एक वृत्तित्व के होने के कारण आग में, साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्व नहीं है यह व्यवहार कथमपि नहीं हो सकता है। अतः आग में लक्षण के समन्वित न होने से अतिव्याप्ति दोष नहीं है यह स्थिर हो जाता है।

माथुरी

साध्याभाववद्वृत्तिश्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन विवक्षणीया, तेन वह्न्यभाववति धूमावयवे जलह्रदादौ च समवायेन कालिकविशेषणतादिना च धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः।

साध्याभावाधिकरण में वृत्ति हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से विवक्षित है। ऐसा मानने से वह्नि के अभाव वाले धूम के अवयव में तथा जल से पूरित ह्रद में क्रमशः समवाय सम्बन्ध से एवं कालिकविशेषणता (कालिक) सम्बन्ध से धूम–सद्धेतु के रहने पर भी कोई क्षति अर्थात् अव्याप्ति–दोष नहीं होता है।

प्रस्तुत व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव के अधिकरण में कोई किस सम्बन्ध से वृत्ति होना चाहिए यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसका समाधान करते हुए आचार्य मथुरानाथ कहते हैं कि साध्याभाव के अधिकरण में कोई वृत्ति, हेतुतावच्छेदक–सम्बन्ध से होना चाहिए।

प्रस्तुत सन्दर्भ में हेतुता का अवच्छेदक सम्बन्ध क्या है? उत्तर है, पर्वत में वह्नि को सिद्ध करने के लिए धूम को जिस सम्बन्ध से हेतु माना जाता है, वही हेतुता का अवच्छेदक सम्बन्ध है। हम सब जानते हैं कि पर्वत पर संयोग सम्बन्ध से अग्नि को सिद्ध करने के लिए हम संयोग सम्बन्ध से ही धूम को हेतु मानते हैं। फलतः धूम में रहने वाली हेतुता का अवच्छेदक सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध ही होगा।

साध्याभाव के अधिकरण में कोई वृत्ति हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से ही होना चाहिए यह सुनिश्चित न होने पर पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् इस सद्धेतुकस्थल में अव्याप्ति दोष इस प्रकार होता है–

साध्य–वह्नि, के संयोग सम्बन्ध से अभाव का अधिकरण, धूम का अवयव अर्थात् धूम का एक भाग होता है। इसी प्रकार इस अभाव का अधिकरण जल से भरा तालाब भी होता ही है। हेतु–धूम, साध्य के अभाव के प्रथम अधिकरण धूम के अवयव या धूम के एक भाग में समवाय सम्बन्ध से वृत्ति या रहता है इसी प्रकार साध्य के अभाव के दूसरे अधिकरण जल से भरे तालाब में धूम–हेतु, कालिक सम्बन्ध से रहता है। फलतः साध्याभाव के अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व के धूम–सद्धेतु में होने से साध्या–

भावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष सुस्पष्ट है।

जब हम यह कह देते हैं कि साध्याभाव के अधिकरण में कोई वृत्ति हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से ही होना चाहिए तब साध्य के अभाव के प्रथम अधिकरण धूम के अवयव या धूम के एक भाग में समवाय सम्बन्ध से तथा साध्य के अभाव के दूसरे अधिकरण जल से भरे तालाब में कालिक सम्बन्ध से हेतु–धूम, के वृत्ति होने पर भी हेतुतावच्छेदक संयोग सम्बन्ध से धूम के अवयव या धूम के एक भाग में तथा जल से भरे तालाब में धूम–हेतु के वृत्ति न होने के कारण व्याप्ति के लक्षण–**साध्याभावाधिकरणनिरूपित–हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–वृत्तित्वसामान्याभाव**[१], का समन्वय सद्धेतु धूम

१. इस परिष्कार के पूर्व 'साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वसामान्याभाव' व्याप्ति के लक्षण के रूप में स्वीकार किया गया था और अब व्याप्ति के लक्षण के रूप में साध्याभावाधिकरणनिरूपित–हेतुतावच्छेदकसम्बन्धा–वच्छिन्न–वृत्तित्वसामान्याभाव स्वीकार किया जा रहा है। इन दोनों वृत्तित्वसामान्याभाव के अन्तर को यहाँ समझ लेना अनिवार्य है।

पहला सामान्याभाव, साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्व किसी भी सम्बन्ध से धूम में होने पर नहीं स्वीकार किया जाता है। यह बात अलग है कि धूम में समवाय एवं कालिक सम्बन्ध से वृत्तित्व के होने के साथ ही संयोग सम्बन्ध से वृत्तित्व का अभाव भी होता है, परन्तु यह वृत्तित्व का अभाव साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वसामान्याभाव नहीं हो सकता है। धूम में कितने भी वृत्तित्व के अभाव हों परन्तु यदि एक भी वृत्तित्व धूम में हो तो धूम में वृत्तित्व नहीं है (धूमे वृत्तित्वं नास्ति) यह व्यवहार नहीं हो सकता है।

शास्त्रीय भाषा में इस आशय को हम इस प्रकार कह सकते हैं– साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वसामान्याभाव का नव्यन्याय की भाषा में तात्पर्य होता है, साध्यनिष्ठ अवच्छेदकता भिन्न, अभावत्वनिष्ठ अवच्छेदकता भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित एतत् अवच्छेदकता द्वय (साध्यनिष्ठ अवच्छेदकता एवं अभावत्वनिष्ठ अवच्छेदकता) से निरूपित

में निराबाध हो जाता है। इस तरह पूर्व दर्शित अव्याप्ति दोष का निराकरण भी अनायास ही हो जाता है।

माथुरी

साध्याभावश्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यता–वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्य:। तेन वह्निमान् धूमादित्यादौ समवायादिसम्बन्धेन वह्निसामान्याभाववति संयोगसम्बन्धेन तत्तद्वह्नित्व–वह्निजलत्वोभयत्वाद्यवच्छिन्नाभाववति च पर्वतादौ संयोगेन धूमस्य वृत्तावपि न क्षति:।

जो अधिकरण निष्ठ अवच्छेदकता, इस अधिकरणनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न वृत्तितात्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित एतत् अवच्छेदकता द्वय (अधिकरणनिष्ठ अवच्छेदकता एवं वृत्तितात्वनिष्ठ अवच्छेदकता) से निरूपित जो वृत्तित्व निष्ठ प्रतियोगिता, ऐसी प्रतियोगिता का निरूपक अभाव।

इस प्रकार का अभाव, साध्याभावाधिकरणनिरूपित–हेतुतावच्छेदक–सम्बन्धावच्छिन्न–वृत्तित्वसामान्याभाव नहीं हो सकता है, क्यों कि इस अभाव की वृत्तित्व में रहने वाली प्रतियोगिता, अधिकरणनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न वृत्तितात्वनिष्ठ अवच्छेदकता से भिन्न अवच्छेदकता से अनिरूपित नहीं है, बल्कि इन दोनों अवच्छेदकताओं से भिन्न जो हेतुतावच्छेदक–सम्बन्धावच्छिन्नत्व निष्ठ अवच्छेदकता है, उससे भी निरूपित ही है।

अन्त में इस स्थिति का आकलन कर व्याप्ति का लक्षण साध्या–भावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वसामान्याभाव न मान कर, साध्या–भावाधिकरणनिरूपित–हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–वृत्तित्वसामान्याभाव ही अगत्या मान लिया जाता है।

ऐसा मान लेने से उपर्युक्त स्थल में साध्याभाव के अधिकरण धूम के अवयव एवं जलह्रद में धूम के संयोग सम्बन्ध से न रहने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय असानी से हो जाता है, फलस्वरूप अव्याप्ति दूर हो जाती है।

इस व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव, साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न एवं साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक जानना चाहिए। साध्याभाव का ऐसा परिष्कार करने से वह्निमान्, धूमात् इत्यादि सद्धेतुक स्थल में समवाय आदि सम्बन्ध से वह्निसामान्याभाव के अधिकरण में और संयोग सम्बन्ध से तत् तत् वह्नित्व अथवा वह्निजलत्वोभयत्व आदि धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक अभाव वाले पर्वत आदि में संयोग सम्बन्ध से धूम के रहने पर भी कोई क्षति (अव्याप्ति) नहीं होती है।

व्याप्ति के इस प्रथम लक्षण में दो अभाव आये हैं। एक है वृत्तित्व का अभाव। दूसरा है साध्य का अभाव। अब तक की चर्चा में वृत्तित्वाभाव कैसा होना चाहिए यह विस्तार से बताया गया। अब साध्याभाव कैसा अभिप्रेत है यह प्रस्तुत अनुच्छेद में बताया जा रहा है।

यहाँ साध्याभाव ऐसा अपेक्षित है जिसकी प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हो तथा साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हो। किसी स्थल में जिस सम्बन्ध से कोई साध्य होता है अर्थात् सिद्ध किया जाता है वही साध्यता का अवच्छेदक सम्बन्ध होता है तथा जिस रूप में या धर्म से कोई साध्य होता है वही साध्यता का अवच्छेदक धर्म होता है।

साध्याभाव का इस प्रकार परिष्कार कर देने से पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् इस सद्धेतुक स्थल में समवाय सम्बन्ध से साध्य—वह्नि के अभाव के अधिकरण पर्वत,महानस आदि में संयोग सम्बन्ध से धूम के वृत्ति होने पर भी कोई क्षति (अव्याप्ति) नहीं होती है।

संयोग सम्बन्ध से तद्वह्नित्व रूप से वह्नि के अभाव के अधिकरण पर्वत महानस आदि में संयोग सम्बन्ध से धूम के वृत्ति होने पर भी कोई क्षति (अव्याप्ति) नहीं होती है।

संयोग सम्बन्ध से वह्नि–जलत्वोभयत्व रूप से वह्नि के अभाव के अधिकरण पर्वत महानस आदि में संयोग सम्बन्ध से धूम के वृत्ति होने पर भी कोई क्षति (अव्याप्ति) नहीं होती है।

यदि साध्याभाव का परिष्कार उपर्युक्त रूप में नहीं करेंगे तो पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् इस सद्धेतुकस्थल में अव्याप्ति होगी यह मथुरा नाथ तर्कवागीश का यहाँ अभिमत है।

अव्याप्ति दोष इस प्रकार होता है – व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव ऐसा अपेक्षित है जिसकी प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हो यदि यह नहीं कहेंगे तो पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् इस सद्धेतुक स्थल में समवाय सम्बन्ध से साध्य–वह्नि के अभाव का अधिकरण पर्वत,महानस आदि हो जाएगा। महानस एवं पर्वत आदि में वह्नि संयोग सम्बन्ध से रहता है तथा समवाय सम्बन्ध से वह्नि अपने अवयव में रहता है न कि महानस एवं पर्वत में क्यों कि महानस एवं पर्वत वह्नि के अवयव नहीं हैं। इस तरह समवाय सम्बन्ध से साध्य वह्नि के अभाव का अधिकरण, धूम–हेतु का संयोग सम्बन्ध से अधिकरण महानस एवं पर्वत आदि भी हो जाता है। इस महानस पर्वत आदि में संयोग सम्बन्ध से धूम सद्धेतु के वृत्ति होने से साध्याभावाधि–करण निरूपित वृत्तित्व ही धूम में आता है फलतः साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वसामान्याभाव रूप व्याप्ति के धूम में न होने से अव्याप्ति होती है।

व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव ऐसा अपेक्षित है जिसकी प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हो यदि यह नहीं कहेंगे तो पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् इस सद्धेतुक स्थल में संयोग सम्बन्ध से वह्नि का अभाव भले महानस पर्वत आदि में न मिले परन्तु संयोग सम्बन्ध से तद्वह्नित्व रूप से वह्नि विशेष का अभाव मिलेगा ही इसी प्रकार से संयोग सम्बन्ध से महानस आदि में वह्नि के होने पर भी जलत्व के न होने से वह्नि एवं जलत्व उभय (दोनों) के न होने के कारण 'महनसादौ वह्नि–जलत्वोभयं नास्ति' इस प्रतीति के आधार पर सिद्ध वह्निजलत्वोभयत्व रूप से वह्नि का अभाव महानस पर्वत आदि में मिल जाता है। इस प्रकार वह्नि के अभाव के अधिकरण महानस आदि

से निरूपित वृत्तित्व के ही धूम–सद्धेतु में होने से वृत्तित्वसामान्याभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न हो पाने के कारण अव्याप्ति दोष सुस्थिर हो जाता है, जिसका निरास साध्याभाव के पूर्व निर्दिष्ट परिष्कार[१] से हो जाता है।

---

१. साध्याभाव ऐसा अपेक्षित है जिसकी प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हो तथा साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हो (साध्याभावश्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न–प्रतियोगिताको बोध्यः) इस प्रकार साध्याभाव का परिष्कार कर लेने पर भी पर्वतः, वह्निमान्, धूमात् इस सद्धेतुक स्थल में संयोग समवाय उभय सम्बन्ध से वह्नि का अभाव पुनः साध्याभाव के रूप में महानस एवं पर्वत आदि में आसानी से मिल जायेगा क्यों कि महानस आदि में संयोग सम्बन्ध से वह्नि के रहने पर भी समवाय सम्बन्ध से वह्नि के न रहने के कारण संयोग समवाय उभय सम्बन्ध से वह्नि, पर्वत पर नहीं है यह प्रामाणिक व्यवहार होने के फलस्वरूप साध्यतावच्छेदक–संयोगसम्बन्धा–वच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक (प्रतियोगिता निरूपक) अभाव संयोग समवाय उभय सम्बन्ध से वह्नि का अभाव साध्याभाव के रूप में महानस एवं पर्वत आदि में सुलभ हो जाता है।

इसी प्रकार साध्याभाव का परिष्कार कर लेने पर भी संयोग सम्बन्ध से महानस आदि में वह्नि के होने पर भी जलत्व के न होने से वह्नि एवं जलत्व उभय (दोनों) के न होने के कारण 'महनसादौ वह्नि–जलत्वोभयं नास्ति' इस प्रतीति के आधार पर सिद्ध वह्निजलत्वोभयत्व रूप से वह्नि का अभाव महानस पर्वत आदि में मिल जाता है क्यों कि इस अभाव की प्रतियोगिता साध्यता के अवच्छेदक संयोग संम्बन्ध से अवच्छिन्न होने के साथ साथ साध्यता के अवच्छेदक धर्म वह्नित्व से भी अवच्छिन्न है ही। इस अभाव के अधिकरण महानसादि से निरूपित संयोग सम्बन्ध से वृत्तित्व ही धूम में होने के कारण वृत्तित्वसामान्याभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का सद्धेतु धूम में समन्वय न हो पाने से अव्याप्ति दोष तदवस्थ रहता है। अव्याप्ति दोष की तदवस्थता को दूर करने के लिए साध्याभाव का परिष्कार साध्यतावच्छेदक संम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से भिन्न सम्बन्ध से अनवच्छिन्न एवं साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न

माथुरी

ननु तथापि गुणत्ववान् ज्ञानत्वात्, सत्तावान् जातेरित्यादौ विषयित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन तादृशसाध्याभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्वजात्यादेर्वर्त्तमानत्वाद् अव्याप्तिः।

इतने परिष्कार के बाद भी यह शङ्का उपस्थित होती है कि गुणत्ववान्, ज्ञानत्वात् एवं सत्तावान्, जातेः ; इन दोनों सद्हेतु वाले स्थल में क्रमशः विषयित्व एवं अव्याप्यत्व सम्बन्ध से अभी–अभी परिष्कृत–साध्याभाव वाले ज्ञान आदि में हेतु ज्ञानत्व एवं जाति आदि के वर्त्तमान होने से अव्याप्ति दोष होता है।

साध्याभाव का यद्यपि परिष्कार कर दिया गया है, परन्तु साध्याभाव का अधिकरण किस सम्बन्ध से लेना है यह अब तक स्पष्ट नहीं किया गया है

साध्यतावच्छेदकधर्म से भिन्न धर्म से अनवच्छिन्न जो प्रतियोगिता ऐसी प्रतियोगिता का निरूपक अभाव के रूप में करना पड़ता है।

ऐसा परिष्कार कर देने के अनन्तर, 'संयोग समवाय उभय सम्बन्ध से वह्नि का अभाव' साध्याभाव के रूप में नहीं मिल पाता है क्यों कि इस अभाव की प्रतियोगिता साध्यता के अवच्छेदक संयोग सम्बन्ध से अतिरिक्त समावाय सम्बन्ध से भी अवच्छिन्न है। इसी तरह संयोग सम्बन्ध से महानस आदि में वह्नि के होने पर भी जलत्व के न होने से वह्नि एवं जलत्व उभय (दोनों) के न होने के कारण 'महनसादौ वह्नि–जलत्वोभयं नास्ति' इस प्रतीति के आधार पर सिद्ध वह्निजलत्वोभयत्व रूप से वह्नि का अभाव महानस पर्वत आदि में मिल जाता है परन्तु अब यह अभाव साध्यता के अवच्छेदक धर्म वह्नित्व से अवच्छिन्न होने के साथ–साथ साध्यता के अवच्छेदक वह्नित्व से भिन्न जलत्वत्व एवं उभयत्व से भी अवच्छिन्न है परिणामस्वरूप परिष्कृत साध्याभाव के रूप में इन अभावों को ले कर अब अव्याप्ति नहीं दी जा सकती है।

फलतः उपर्युक्त शङ्का सहज रूप में अवतरित होती है।

पहला स्थल जहाँ अव्याप्ति दी गयी है वह है— गुणत्ववान्, ज्ञानत्वात् यहाँ किसी भी बोध को हम पक्ष बना सकते हैं जहाँ हमें ज्ञानत्व का संदेह हो। उदाहरण के लिए यदि किसी को यह संदेह हो कि साइंस अर्थात् विज्ञान के बोध में गुणत्व है कि नहीं तो उसे हम समझाएँगे कि विज्ञान का बोध गुणत्व वाला है क्यों कि जैसे घट के बोध में, पट के बोध में, वृक्ष के बोध में ज्ञानत्व होने के कारण गुणत्व मान्य है ठीक उसी प्रकार विज्ञान—साइंस के बोध में भी ज्ञानत्व होने के कारण गुणत्व सिद्ध होता है। इस प्रकार 'विज्ञानावबोधः, गुणत्ववान्, ज्ञानत्वात्' यह सद्धेतुक स्थल है यह सुस्पष्ट है।

तादृश साध्याभाव अर्थात् साध्यतावच्छेदक—समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक—गुणत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक (प्रतियोगिता निरूपक) अभाव समवाय सम्बन्ध से गुणत्व का अभाव साध्याभाव के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। यह गुणत्वाभाव सामान्य रूप से गुण को छोड़ कर द्रव्य आदि में रहता है परन्तु यही गुणत्व का अभाव विषयिता[१] सम्बन्ध से गुणत्वाभाव को विषय

---

१. संसार की हर वस्तु जाने जाने योग्य (ज्ञेय) है। हर वस्तु का हमें ज्ञान हो सकता है। यहाँ यह जिज्ञासा सहज ही होती है कि वस्तु एवं ज्ञान के बीच क्या सम्बन्ध है? इसका सरल उत्तर है विषय—विषयिभाव। हम वस्तु को विषय कहते हैं तथा ज्ञान को विषयी कहते हैं। विषय के भाव का तात्पर्य विषयता से है। इसी प्रकार विषयी के भाव का अर्थ विषयिता ही होता है। इस तरह विषय—विषयिभाव का अर्थ विषयता एवं विषयिता पर्यवसित होता है।

अनुयोगी में रहने वाला धर्म ही संसर्ग होता है **(अनुयोगिवृत्तिधर्मः संसर्गः)** इस नियम के अनुसार जो वस्तु जहाँ रहती है उसमें रहने वाला धर्म ही रहने वाली वस्तु का सम्बन्ध होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में, यदि विषय या वस्तु ज्ञान में रहता है तो ज्ञान में रहने वाला धर्म विषयिता ही विषय या वस्तु का ज्ञान के साथ सम्बन्ध माना जायेगा, और यदि विषय या वस्तु में ज्ञान रहता है तो विषय या वस्तु में रहने वाला धर्म विषयता ही ज्ञान का वस्तु के साथ सम्बन्ध होगा। ऐसी स्थिति में साध्याभाव—गुणत्वाभाव,

करने वाले ज्ञान में भी मिल जायेगा अत: विषयिता सम्बन्ध से साध्याभाव– गुणत्व के अभाव का अधिकरण गुणत्वाभावविषयक ज्ञान हो जाने के कारण तथा गुणत्वाभाव को विषय करने वाले ज्ञान में ज्ञानत्व हेतु के समवाय सम्बन्ध (हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध) से वृत्ति होने से वृत्तित्वसामान्याभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय ज्ञानत्व–सद्धेतु में नहीं हो पाता है और इस प्रकार पुन: अव्याप्ति स्थिर हो जाती है।

दूसरा स्थल[१] जहाँ अव्याप्ति दी गयी है वह है– सत्तावान्,जाते: यहाँ किसी भी जाति वाले को हम पक्ष बना सकते हैं जहाँ हमें सत्ता का संदेह हो। उदाहरण के लिए यदि किसी को यह संदेह हो कि जाति वाले गुण में सत्ता है कि नहीं तो उसे हम समझाएँगे कि गुण सत्ता वाला है क्यों कि जैसे द्रव्य में, कर्म में, द्रव्यत्व एवं कर्मत्व रूप जाति होने के कारण सत्ता मान्य है ठीक उसी प्रकार गुण में भी गुणत्व–जाति होने के कारण सत्ता सिद्ध होती है। इस प्रकार गुण:, सत्तावान्, जाते: यह सद्धेतुक स्थल है यह सुस्पष्ट है।

विषय या वस्तु होने के कारण, अपने ज्ञान–गुणत्वाभाव को विषय करने वाले ज्ञान, में विषयिता सम्बन्ध से रहेगा यह तथ्य करामलक (हाथ में स्थित आँवले) की तरह स्पष्ट हो जाता है।

१. 'विज्ञानावबोध:, गुणत्ववान्, ज्ञानत्वात्' इस प्रथम स्थल में अव्याप्ति है तो पुन: दूसरे स्थल गुण:, सत्तावान्, जाते:, यहाँ पर अव्याप्ति का उद्भावन व्यर्थ में मथुरानाथ तर्क वागीश क्यों कर रहे हैं? ऐसी जिज्ञासा नहीं करनी चाहिए। क्यों कि प्रथम स्थल में साध्याभाव का अधिकरण विषयिता सम्बन्ध से ले कर दोष दिया गया है जो कि विषयिता सम्बन्ध के वृत्तिता का नियामक न होने के कारण सम्भव नहीं है। वृत्तिता के नियामक सम्बन्ध स्वरूप सम्बन्ध से गुणत्वाभाव का अधिकरण कभी भी ज्ञान नहीं होगा अपितु गुण को छोड़ कर द्रव्य आदि ही होंगें यहाँ ज्ञानत्व हेतु के अवृत्ति होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय हो जाता है फलत: प्रथम स्थल में अव्याप्ति न होने के कारण दूसरे स्थल का अनुसरण मथुरानाथ ने किया है यह विशेष रूप से यहाँ अवधेय है।

तादृश साध्याभाव अर्थात् साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–सत्तात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक (प्रतियोगिता निरूपक) अभाव समवाय सम्बन्ध से सत्ता का अभाव साध्याभाव के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। यह सत्ताभाव सामान्य रूप से द्रव्य–गुण–कर्म को छोड़ कर सामान्य आदि में रहता है परन्तु यही सत्ता का अभाव अव्याप्यत्व (स्वाभाववद् वृत्तित्व)[१] सम्बन्ध से द्रव्य–गुण–कर्म में भी मिल जायेगा अत: अव्याप्यत्व (स्वाभाववद्–

---

१. व्याप्यत्व या व्याप्ति का अर्थ होता है 'स्वाभाववद् अवृत्तित्व' जैसे आग और धूएँ के बीच व्याप्यत्व या 'स्व–आग के अभाववद्–तलाब आदि में अवृत्तित्व'–धूम में है, जो आग का धूएँ के साथ सम्बन्ध है। फलस्वरूप आग, 'स्वाभाववदवृत्तित्व' सम्बन्ध से धूएँ में है यह हम कहते हैं। इसी प्रकार अव्याप्यत्व का अर्थ व्याप्यत्व–स्वाभाववद् अवृत्तित्व का उल्टा अव्याप्यत्व–स्वाभाववद् वृत्तित्व होता है। आग की व्याप्ति धूम में होने से आग व्याप्ति या व्याप्यत्व या स्वाभाववद् अवृत्तित्व सम्बन्ध से जैसे धूम में रहता है ठीक इसी तरह धूम की व्याप्ति आग में न होने के कारण धूम अव्याप्यत्व या स्वाभाववद् वृत्तित्व या व्यभिचार या व्यभिचरितत्व सम्बन्ध से आग में अवस्थित होता है।

प्रस्तुत प्रकरण में साध्याभाव–सत्ता का अभाव है। यह अव्याप्यत्व अर्थात् स्व–सत्ताभाव, अभाव–सत्ता के अभाव का अभाव–सत्ता स्वरूप, वद्–द्रव्य (अवयव कपाल आदि रूप एवं अवयवी घट आदि रूप) में वृत्तित्व–द्रव्य, गुण एवं कर्म में स्पष्ट है। अवयव कपाल आदि में अवयवी घट आदि समवाय सम्बन्ध से रहते हैं साथ ही अवयव द्रव्य तथा अवयवी द्रव्य घटादि में गुण एवं कर्म भी समवाय सम्बन्ध से रहता है यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट है। इस प्रकार अव्याप्यत्व सम्बन्ध या स्वाभाववद् वृत्तित्व सम्बन्ध से सत्ताभाव–साध्याभाव का अधिकरण द्रव्य,गुण एवं कर्म हो जाते हैं और इनमें जाति हेतु के होने से व्याप्ति लक्षण की अव्याप्ति हो जाती है।

वृत्तित्व) सम्बन्ध[१] से साध्याभाव—सत्ता के अभाव का अधिकरण द्रव्य—गुण—कर्म हो जाने के कारण तथा द्रव्य—गुण—कर्म में जाति हेतु के समवाय सम्बन्ध (हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध) से वृत्ति होने से वृत्तित्वसामान्याभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय जाति—सद्धेतु में नहीं हो पाता है और इस प्रकार पुनः इस सद्धेतु वाले स्थल में भी अव्याप्ति स्थिर हो जाती है।

माथुरी

न च साध्याभावाधिकरणत्वम् अभावीयविशेषणताविशेष—सम्बन्धेन विवक्षितमिति वाच्यम्, तथा सति घटत्वात्यन्ताभाववान् घटान्योन्याभाववान् वा पटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेर्विशेषणताविशेषसम्बन्धेनाधिकरणस्य अप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति चेत्, न, अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरत्यन्ताभावस्य सप्तमपदार्थस्वरूपत्वात्।

इस अव्याप्ति का निवारण करने के लिए व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव का अधिकरण अभावीय—विशेषणता—विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से विवक्षित है यह नहीं कहा जा सकता है। अभावीय—विशेषणता—विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से साध्याभाव

---

१. प्रथम स्थल में जैसे विषयिता सम्बन्ध वृत्तिता का नियामक नहीं माना जाता है उसी तरह इस दूसरे स्थल में भी अव्याप्यत्व या स्वाभाववद्वृत्तित्व सम्बन्ध भी वृत्तिता का नियामक नहीं है, यह नहीं माना जा सकता। ऐसा इस लिए क्यों कि 'इह हेतौ उपाधिः' इस प्रकार प्रामाणिकों को प्रतीति होती है। हेतु में उपाधि की वृतिता को अव्याप्यत्व या स्वाभाववद् वृत्तित्व सम्बन्ध से बताया जा रहा है जो अव्याप्यत्व या स्वाभाववद् वृत्तित्व सम्बन्ध को वृत्तिता का नियामक मानने पर ही सम्भव है। इस प्रकार दूसरे स्थल गुणः, सत्तावान्, जातेः, यहाँ पर अव्याप्ति सुस्थिर है।

का अधिकरण लक्षण में विवक्षित है, ऐसा मानने पर, उपर्युक्त दोनों स्थलों में अव्याप्ति का वारण तो हो जाता है परन्तु पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्, एवं पटः, घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्, इत्यादि सद्धेतुकस्थल में घटत्व आदि रूप साध्याभाव का विशेषणता विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से अधिकरण के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति होने लगती है, यह आपत्ति नहीं दे सकते हैं, क्यों कि अत्यन्ताभाव एवं अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को भावरूप न मान कर सप्तम पदार्थ (अभाव) स्वरूप मानते हैं।

यह प्रायः सभी विद्वानों को मान्य है कि अभाव सहज रूप में स्वरूप सम्बन्ध से रहता है। पूर्व में विषयिता एवं अव्याप्यत्व सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण ले कर अव्याप्ति दोष की बात की गई। ऐसी स्थिति में यदि व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव का अधिकरण अभावीय–विशेषणता–विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से विवक्षित है ऐसा निवेश कर दें तो दोनों स्थलों में अव्याप्ति का वारण सहज रूप में हो जाता है, यह नहीं कहा जा सकता है। क्यों कि स्वरूप सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण मानने पर भी अव्याप्ति दोष से तो मुक्ति नहीं ही मिलती है। यह बात अलग है कि बोधः, गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् एवं 'गुणः, सत्तावान्, जातेः' इन स्थलों में अव्याप्ति नहीं होती है पर अभाव साध्य वाले पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्, एवं पटः, घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्, इत्यादि सद्धेतुकस्थल में घटत्व आदि रूप साध्याभाव का विशेषणता विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से अधिकरण के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति तो होती ही है।

पहला स्थल, पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्, है। यहाँ पर पट पक्ष है, घटत्व का समवाय सम्बन्ध से जो अत्यन्ताभाव वह स्वरूप सम्बन्ध से साध्य है तथा पटत्व समवाय सम्बन्ध से हेतु है। साध्य–घटत्वात्यन्ताभाव, घटत्व जहाँ (घट) में समवाय सम्बन्ध से रहता है उसे छोड़ कर संसार की हर वस्तु में स्वरूप सम्बन्ध से रहेगा। इस साध्य–घटत्वात्यन्ताभाव का स्वरूप

सम्बन्धसे अभाव पुनः घट में ही मिलेगा। इस प्रकार घटत्व के अत्यन्ताभाव का अभाव स्वरूप सम्बन्ध से घट में ही है एवं घट में घटत्व भी समवाय सम्बन्ध से रहता है अतः दोनों सम–नियत अर्थात् समान स्थानों में नियमित रूप से रहने के कारण एक ही हैं यह तार्किकों द्वारा मान लिया जाता है। इस मान्यता के अनुसार लाघव बल से घटत्व के अत्यन्ताभाव का अभाव घटत्व रूप प्रामाणिकों द्वारा माना जाता है।

ऐसी स्थिति में यदि साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से ही लेना है ऐसा व्याप्ति लक्षण में निवेश कर देते हैं तो यहाँ घटत्व रूप साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से अप्रसिद्ध हो जाने से लक्षण समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष हो जाता है।

दूसरा स्थल, पटः, घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्, है। यहाँ पर पट पक्ष है, घट का तदात्म्य सम्बन्ध से जो अभाव (अन्योन्याभाव) वह स्वरूप सम्बन्ध से साध्य है तथा पटत्व समवाय सम्बन्ध से हेतु है। साध्य–घटान्योन्याभाव, घट जहाँ (घट) में तादात्म्य सम्बन्ध से रहता है उसे छोड़ कर संसार की हर वस्तु में स्वरूप सम्बन्ध से रहेगा। इस साध्य–घटान्योन्याभाव का स्वरूप सम्बन्धसे अभाव पुनः घट में ही मिलेगा। इस प्रकार घट के अन्योन्याभाव का अभाव स्वरूप सम्बन्ध से घट में ही है एवं घट में घटत्व भी समवाय सम्बन्ध से रहता है अतः दोनों सम–नियत अर्थात् समान स्थानों में निमित रूप से रहने के कारण एक ही हैं यह तार्किकों द्वारा मान लिया जाता है। इस मान्यता के अनुसार लाघव बल से घट के अन्योन्याभाव का अभाव घटत्व रूप प्रामाणिकों द्वारा माना जाता है।

ऐसी स्थिति में यदि साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से ही लेना है ऐसा व्याप्ति लक्षण में निवेश कर देते हैं तो यहाँ घटत्व रूप साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से अप्रसिद्ध हो जाने से लक्षण समन्वय न होने के कारण इस अन्योन्याभाव साध्य वाले स्थल में भी अव्याप्ति दोष हो जाता है।

फलत: स्वरूप सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण लेना है इस प्रकार व्याप्ति के लक्षण में निवेश सम्भव नहीं है, यह कहना समुचित नहीं है, क्यों कि अत्यन्ताभाव के अभाव को एवं अन्योन्याभाव के अभाव को भाव रूप न मान कर अतिरिक्त सप्तम पदार्थ–अभाव रूप ही माना जाता है।

अन्तत: साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से ही लेना है ऐसा व्याप्ति के लक्षण में निवेश कर देने से अत्यन्ताभाव साध्य वाले स्थल में स्वरूप सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण प्रसिद्ध हो जाने से अव्याप्ति नहीं होगी साथ ही बोध:, गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् एवं 'गुण:, सत्तावान्, जाते:' इन स्थलों में भी अव्याप्ति निरस्त हो जाती है।

माथुरी

अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरत्यन्ताभावस्य प्रतियोग्यादि–स्वरूपत्वनये तु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यता–वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीय–प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं वक्तव्यम्; वृत्त्यन्तं प्रतियोगिताविशेषणम्, तादृशसम्बन्धश्च वह्निमान् धूमादित्याद्यभावसाध्यकस्थले विशेषणताविशेष एव, घटत्वाभाववान् पटत्वादित्याद्यभावसाध्यकस्थले तु समवायादिरेव।

अत्यन्ताभाव एवं अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को प्रतियोगि एवं प्रतियोगितावच्छेदक रूप मानने के सिद्धान्त में तो, साध्य–तावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न–प्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदक–सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण कहना चाहिए; इस सम्बन्ध में वृत्ति तक का भाग प्रतियोगिता में विशेषण है और

ऐसा सम्बन्ध 'पर्वतः, वह्निमान्, धूमात्' इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में विशेषणता–विशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध ही होगा, 'पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्' इत्यादि अभाव साध्य वाले स्थल में तो समवाय आदि सम्बन्ध ही होगा।

यदि अत्यन्ताभाव के अभाव को एवं अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को अतिरिक्त अभाव–स्वरूप मानने वालों के सिद्धान्त को नहीं मानेंगे तथा अत्यन्ताभाव के अभाव को प्रतियोगि–स्वरूप एवं अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को प्रतियोगितावच्छेदक–स्वरूप मानने वालों का सिद्धान्त ही स्वीकार करेंगे तो साध्याभाव का अधिकरण, स्वरूप सम्बन्ध से ही लेना है ऐसा व्याप्ति लक्षण में निवेश कर देने पर पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्, एवं पटः, घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्,यहाँ घटत्व रूप साध्याभाव का अधिकरण, स्वरूप सम्बन्ध से अप्रसिद्ध हो जाने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष सुस्थिर हो जाता है।

यदि साध्याभाव का अधिकरण किस सम्बन्ध से लेना है यह निर्धारित न करें तो गुणः, सत्तावान्, जातेः एवं 'विज्ञानावबोधः, गुणत्ववान्, ज्ञानत्वात्' इन दोनों सद्धेतुक स्थलों में पूर्व दर्शित रीति से अव्याप्ति स्थिर हो जाती है।

ऐसी परिस्थिति में, साध्याभाव का अधिकरण हमें ऐसे सम्बन्ध से लेना होगा जिससे उपर्युक्त तीनों स्थलों में साध्याभाव का अधिकरण अभीष्ट सम्बन्ध से ले कर लक्षण समन्वय किया जा सके। इसी दृष्टि से मथुरानाथ तर्कवागीश ने साध्याभाव का अधिकरण **'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगि–तावच्छेदकसम्बन्ध'** से लेने का निर्देश दिया है। साध्याभाव का अधिकरण लेने के लिए यह सम्बन्ध ऐसा है जो भाव साध्य वाले (गुणः, सत्तावान्, जातेः) स्थल में एवं अभाव साध्यवाले (पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्) स्थल

में साध्याभाव का अधिकरण लेने के लिए एक सम्बन्ध माना जा सकता है।[१]

स्थाली पुलाकन्याय से इस सम्बन्ध की समीक्षा गुण:,सत्तावान्,जाते: इस भाव साध्य वाले स्थल में करते हैं – इस स्थल में साध्याभाव है गुणत्व का अभाव, इसका स्वरूप सम्बन्ध से अधिकरण अभीष्ट है। यह स्वरूप सम्बन्ध; साध्यता के अवच्छेदक समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यता के अवच्छेदक गुणत्वत्व से अवच्छिन्न, साध्याभाव गुणत्वाभाव में वृत्ति, जो गुणत्वाभाव के अभाव रूप साध्य की प्रतियोगिता उस प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध है। अत: इस सम्बन्ध से यहाँ साध्याभाव का गुणत्वाभाव का अधिकरण कर्म आदि को ले कर, इस अधिकरण से निरूपित वृत्तिता का अभाव ज्ञानत्व हेतु में होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय कर लिया जाता है।

अभाव साध्यवाले (पट:, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्) स्थल में साध्याभाव है घटत्वात्यन्ताभाव का अभाव अर्थात् घटत्व, इसका समवाय

---

१. गुणत्ववान् ज्ञानत्वात्, एवं सत्तावान् जाते: इन दोनों स्थलों में विषयिता एवं अव्याप्यत्व सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण ले कर अव्याप्ति दी गयी थी जो अब सम्भव नहीं है। क्यों कि गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् इस स्थल में विषयिता सम्बन्ध; साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध–समवायसम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यतावच्छेदक धर्म–गुणत्वत्व से अवच्छिन्न साध्याभाव–गुणत्वाभाव में वृत्ति जो गुणत्वाभावाभाव रूप साध्य–गुणत्व–सामान्य की प्रतियोगिता उसका अवच्छेदक सम्बन्ध नहीं है। चूँकि गुणत्व के अभाव का स्वरूप सम्बन्ध से लिया गया अभाव ही गुणत्वाभावाभाव अर्थात् गुणत्व होता है न कि किसी अन्य सम्बन्ध से लिया गया अभाव, अत: गुणत्वाभावाभाव रूप साध्य–गुणत्व सामान्य की प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध स्वरूप सम्बन्ध ही स्वीकार किया जायेगा। इस प्रकार इस स्थल में साध्याभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से गुण से भिन्न कर्म आदि ही होगा। इससे निरूपित वृत्तिता कर्मत्व आदि में आयेगी, वृत्तिता का अभाव ज्ञानत्व हेतु में अक्षुण्ण होने से अव्याप्ति वारित हो जाती है।

सम्बन्ध से अधिकरण अभीष्ट है। यह समवाय सम्बन्ध; साध्यता के अवच्छेदक स्वरूप सम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यता के अवच्छेदक घटत्वात्यन्ताभावत्व से अवच्छिन्न, साध्याभाव घटत्वात्यन्ताभावाभाव अर्थात् घटत्व में वृत्ति, जो घटत्वात्यन्ताभावाभाव के अभाव अर्थात् घटत्वात्यन्ताभाव रूप साध्य की प्रतियोगिता उस प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध है। अत: इस सम्बन्ध से यहाँ साध्याभाव का, घटत्वात्यन्ताभावाभाव अर्थात् घटत्व का अधिकरण घट को ले कर, इस अधिकरण से निरूपित वृत्तिता का अभाव पटत्व हेतु में होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय कर लिया जाता है।

माथुरी

समवाय, विषयित्वादिसम्बन्धेन प्रमेयादिसाध्यके ज्ञानत्वादिहेतौ साध्यतावच्छेदकसमवायादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयाद्यभावस्य कालिकादिसम्बन्धेन योऽभाव: सोऽपि प्रमेयतया साध्यान्तर्गत– स्तदीयप्रतियोगितावच्छेदककालिकादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणे ज्ञानत्वादेर्वृत्याऽव्याप्तिवारणाय सामान्यपदोपादानम्। साध्य– सामान्यीयत्वञ्च यावत्साध्यनिरूपितत्वं स्वानिरूपकसाध्य– कभिन्नत्वमिति यावत्।

समवाय विषयिता आदि सम्बन्ध से प्रमेय आदि साध्य वाले ज्ञानत्व आदि हेतु वाले स्थल में, साध्यता के अवच्छेदक समवाय आदि सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रमेय आदि के अभाव का कालिक आदि सम्बन्ध से जो अभाव वह भी प्रमेय होने के कारण साध्य के अन्तर्गत आता है। इसकी प्रतियोगिता के अवच्छेदक कालिक आदि सम्बन्ध से साध्याभाव के अधिकरण में ज्ञानत्व आदि हेतु के रहने से अव्याप्ति होती है, जिसका वारण करने के लिए सामान्य पद का उपादान किया गया है।

साध्यसामान्यीयत्व का अर्थ यावत्साध्यनिरूपितत्व है, जिसका फलितार्थ स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नत्व होता है।

इस अनुच्छेद में, प्रतियोगिता में साध्यसामान्यीयत्व का प्रवेश न कर केवल साध्यीयत्व का ही निवेश क्यों नहीं किया गया? इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया गया है। यदि प्रतियोगिता में केवल साध्यीयत्व का निवेश करेंगे तो पर्वत: वह्निमान् धूमात्, विज्ञानावबोध: गुणत्ववान् ज्ञानत्वात्, गुण: सत्तावान् जाते:, पट: घटत्वात्यन्ताभाववान् पटत्वात् एवं पट: घटान्योन्याभाववान् पटत्वात् इन सद्धेतु वाले स्थलों में यथा–क्रम पहले के दो स्थलों में स्वरूप सम्बन्ध से एवं अन्त के दो स्थलों में समवाय सम्बन्ध से साध्य के अभाव का अधिकरण ले कर लक्षण समन्वय हो जाता है।

फिर भी विज्ञानावबोध: प्रमेयवान् ज्ञानत्वात् इस सद्धेतु वाले स्थल में लक्षण समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष पुन: स्थिर हो जाता है। विज्ञानावबोध: गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् इस स्थल में पहले अव्याप्ति दी गयी थी जो वारित हो गयी है परन्तु विज्ञानावबोध: प्रमेयवान् ज्ञानत्वात् इस स्थल में अव्याप्ति हो रही है क्यों? इन दोनों स्थलों में क्या भेद है? यह प्रश्न सहज रूप में उपस्थित होता है। वास्तव में दोनों स्थलों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। अन्तर मात्र इतना है कि गुणत्व को ही हम दूसरे स्थल में भी सिद्ध करते हैं परन्तु गुणत्वत्व रूप से नहीं अपितु प्रमेयत्व रूप से, गुणत्व का गुणत्व शब्द से उल्लेख न कर हम प्रमेय शब्द से यहाँ उल्लेख करते हैं।

इस स्थल में साध्य–प्रमेय (गुणत्व) का समवाय सम्बन्ध से अभाव साध्याभाव है। साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यता–वच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव वृत्ति साध्यीय प्रतियोगिता के रूप में साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव के कालिक सम्बन्ध से अभाव (इसके भी एक प्रमेय होने से) की प्रतियोगिता भी मान ली जाती है। इस प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध–कालिक सम्बन्ध, से साध्याभाव–समवाय सम्बन्ध से प्रमेयाभाव, का

अधिकरण जन्य–ज्ञान भी हो जाता है। फलस्वरूप, इस जन्य ज्ञान में ज्ञानत्व हेतु के निराबाध विद्यमान होने से अव्याप्ति दोष स्थिर होता है।

साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव में साध्यतावच्छेदक–समवाय–सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव के कालिक सम्बन्ध से अभाव रूप, एक साध्य–प्रमेय की प्रतियोगिता है परन्तु साध्यसामान्य अर्थात् सभी साध्य–प्रमेय की प्रतियोगिता नहीं है।

जब हम साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव का स्वरूप सम्बन्ध से अभाव लेते हैं तब यह अभाव सभी प्रमेय रूप अर्थात् यावत् साध्य रूप हो जाता है। इस सभी साध्य से निरूपित प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध स्वरूप सम्बन्ध होता है। समवाय सम्बन्ध से प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव का स्वरूप सम्बन्ध से अधिकरण ज्ञान कभी भी नहीं होता है। इस प्रकार समवाय सम्बन्ध से प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव का स्वरूप सम्बन्ध से अधिकरण सामान्य आदि पदार्थ होगा। सामान्य आदि में ज्ञानत्व हेतु के न होने से साध्या–भावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय ज्ञानत्व हेतु में सहज ही हो जाता है। परिणाम स्वरूप, प्रतियोगिता में साध्यसामान्यीयत्व[१] का निवेश करने से उपर्युक्त अव्याप्ति का निरास, हो जाता है।

---

१. यद्यपि साध्याभावाधिकरणता के नियामक उपर्युक्त सम्बन्ध में प्रतियोगिता अंश में 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से वृत्तिमत्साध्यनिरूपितत्व के निवेश मात्र कर देने से भी अव्याप्ति का निरास सम्भव है। कारण स्पष्ट है, प्रमेयवान्, ज्ञानत्वात् इस सद्धेतुक स्थल में प्रमेयाभाव का कालिक–सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव, अतिरिक्त अभावस्वरूप होने के कारण साध्यतावच्छेदक समवाय सम्बन्ध से वृत्तिमत् नहीं है। फलतः इस अभाव की प्रतियोगिता, 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यता–वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्ति, साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से वृत्तिमत् साध्य से निरूपित प्रतियोगिता के रूप में स्वीकार नहीं की जा

जिस प्रतियोगिता का अनिरूपक कोई साध्य होगा वह प्रतियोगिता स्वानिरूपकसाध्यिका होगी अर्थात् साध्यसामान्यीया नहीं होगी। इसी तरह जिस प्रतियोगिता का अनिरूपक कोई साध्य नहीं होगा वह प्रतियोगिता स्वानिरूपक–साध्यकभिन्ना होगी अर्थात् साध्यसामान्यीया होगी।

उपर्युक्त स्थल में साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव में साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव के कालिक सम्बन्ध से अभाव रूप, एक साध्य–प्रमेय की

सकती है। इस प्रकार इस प्रतियोगिता के अवच्छेदक कालिक सम्बन्ध से साध्याभावाधिकरण के रूप में हेतु के अधिकरण जन्य ज्ञान को ले कर अव्याप्ति कथमपि सम्भव नहीं है।

फिर भी, 'प्रमेयवान् तज्ज्ञानत्वात्' इस सद्धेतु वाले स्थल में तज्ज्ञानत्व–प्रमेयविषयक ज्ञानत्व, हेतु से विषयिता सम्बन्ध से प्रमेय को साध्य करने पर अव्याप्ति अवश्य होगी। इस स्थल में, साध्यतावच्छेदक–सम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाव 'विषयित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक प्रमेयाभाव' है। इस अभाव में वृत्ति 'साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से वृत्तिमत्–साध्य निरूपित प्रतियोगिता, उपर्युक्त साध्याभाव की कालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव की कालिकसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिता निराबाध हो जायेगी, क्यों कि प्रमेयाभाव का कालिकसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव विषयिता सम्बन्ध से स्वविषयक ज्ञान में वृत्तिमत् है। फलतः इस अभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक कालिक सम्बन्ध से विषयित्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव के अधिकरण प्रमेय विषयक ज्ञान में तज्ज्ञानत्व रूप उपर्युक्त हेतु के रहने से अव्याप्ति दोष तो हो ही जाता है। यही कारण है कि, साध्याभावनिरूपित अधिकरणता के नियामक उपर्युक्त सम्बन्ध में प्रतियोगिता अंश में साध्यनिरूपितत्व का निवेश न कर के साध्यसामान्यीयत्व–साध्यसामान्यनिरूपितत्व का प्रवेश मथुरानाथ को अभीष्ट है।

प्रतियोगिता है। यही कारण है कि साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव में रहने वाली यह प्रतियोगिता स्वानिरूपक अन्य प्रमेय रूप साध्य की निरूपिका ही है। फलत: स्वानिरूपक साध्यकभिन्ना अर्थात् साध्यसामान्यीया नहीं है।

इसके विपरीत साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यता–वच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव रूप साध्याभाव में साध्यताव–च्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव के स्वरूप सम्बन्ध से अभाव रूप, समस्त साध्य–प्रमेय की प्रतियोगिता है। यही कारण है कि साध्यतावच्छेदक–समवायसम्बन्धावच्छिन्न साध्यता–वच्छेदक–प्रमेयत्वावच्छिन्न प्रमेयाभाव में रहने वाली यह प्रतियोगिता स्वानिरूपक अन्य प्रमेय रूप साध्य की निरूपिका नहीं हो पाती है। फलत: स्वानिरूपक साध्यकभिन्ना अर्थात् साध्यसामान्यीया हो जाती है। इस तरह साध्यसामान्यीयत्व का निष्कर्ष रूप में अर्थ स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नत्व मान लेने से अव्याप्ति दोष का भी परिहार अनायास ही हो जाता है।

माथुरी

अस्यैकोक्तिमात्रपरतया गौरवस्यादोषत्वात्, अनुमिति–कारणतावच्छेदके च भावसाध्यकस्थले अभावीयविशेषणताविशेषेण साध्याभावाधिकरणत्वम् अभावसाध्यकस्थले च यथायथं समवायादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वमुपादेयम्, साध्य–साधनभेदेन कार्यकारणभावभेदात्।

इस एक उक्ति मात्र के कारण, (सम्बन्ध शरीर के दीर्घ होने पर भी) गौरव दोष नहीं है। अनुमिति की कारणता (व्याप्ति–ज्ञान में रहने वाली) के अवच्छेदक व्याप्ति में प्रविष्ट अभाव का, भाव साध्य वाले स्थल में अभावीय विशेषणताविशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण लेना है और अभाव साध्य

वाले स्थल में जहाँ जैसा सम्भव हो वैसे, समवाय आदि सम्बन्ध से साध्याभाव की अधिकरणता उपादेय (लेनी) है, क्यों कि साध्य एवं साधन के भेद से कार्यकारणभाव भिन्न होता है।

अनुमिति की कारणता के अवच्छेदक—व्याप्ति (लक्षण) में घटक अर्थात् सन्निविष्ट साध्य के अभाव का अधिकरण **'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा–वच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीय–प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध'** से ग्राह्य है यह कथन गौरवग्रस्त है। यद्यपि इस कथन की अपेक्षा भाव साध्य वाले 'पर्वतो, वह्निमान्, धूमात्' इस तरह के स्थल में, साध्य के अभाव का अधिकरण स्वरूप सम्बन्ध से लेना है तथा अभाव साध्य वाले 'पटः, घटत्वात्यन्ताभाववान्, पटत्वात्' इस प्रकार के स्थल में साध्य के अभाव का अधिकरण समवाय आदि सम्बन्ध से लेना है, यह कहने में लाघव है। तथापि प्रस्तुत सन्दर्भ में इस प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए, क्यों कि उपर्युक्त कथन, भाव एवं अभाव दोनों प्रकार के साध्यवाले स्थलों में व्याप्ति के लक्षण का कथन एक स्वरूप[१] में हो सके, मात्र इस आशय से ही है।

एक प्रकार के व्याप्ति लक्षण वाक्य से व्याप्ति की उक्ति का यह तात्पर्य कथमपि नहीं समझना चाहिए कि व्याप्ति—ज्ञान में जो अनुमिति की कारणता है उसके अवच्छेदक विषय के रूपमें इस गुरु भूत लम्बे संसर्ग का निवेश (अनुमिति कारणता की अवच्छेदकता की अवच्छेदक परम्परा में) अभीष्ट है। वास्तव में व्याप्ति के ज्ञान में जो अनुमिति की कारणता होती है उसकी अवच्छेदकता के अवच्छेदक परम्परा में निविष्ट संसर्ग तो भाव साध्य

---

१. भाव साध्य वाला स्थल हो या अभाव साध्य वाला स्थल हो दोनों स्थलों को ध्यान में रखते हुए यदि व्याप्ति का क्या लक्षण है? यह पूछा जाय तो **'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक–साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध' से साध्या–भावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव** व्याप्ति का लक्षण है इस तरह एक ही लक्षण वाक्य से व्याप्ति की उक्ति हो सकती है

वाले स्थलों में स्वरूपत्व रूप से स्वरूप ही होता है तथा आभाव साध्य वाले स्थलों में समवायत्व आदि रूप से समवाय आदि ही प्रामाणिकों द्वारा स्वीकृत होता है।

विभिन्न स्थलों में साध्य एवं साधन के भेद से अलग–अलग प्रकार के व्याप्ति ज्ञान होते हैं। अतः अलग–अलग साध्य एवं हेतु वाली अनुमिति की कारणता अलग–अलग प्रकार[१] के व्याप्ति ज्ञान में अनिवार्य रूप से मानी ही जाती है।[२] फलतः अनुमिति की कारणता के अवच्छेदकता के अवच्छेदक

---

१. उदाहरण के लिये वह्नि साध्य वाली अनुमिति में वह्न्यभावाधिकरण–निरूपितवृत्तित्वाभाव स्वरूप व्याप्ति का ज्ञान एवं प्रमेय साध्य वाली अनुमिति में प्रमेयाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति का ज्ञान कारण के रूप में प्रामाणिकों द्वारा स्वीकार किया जाता है।

२. यदि सामान्य रूप से अनुमिति के प्रति व्याप्ति का ज्ञान कारण है यह माना जाएगा तो किसी एक साध्य के व्याप्ति का ज्ञान होने पर किसी अन्य साध्य की अनुमिति की आपत्ति होने लगेगी। इसी प्रकार किसी एक साध्य के व्याप्ति का ज्ञान यदि किसी को हो गया तो उसे किसी भी साध्य की या सभी साध्यों की अनुमिति होने लगे यह आपत्ति सुनिश्चित हो जायेगी। उदाहरणार्थ, धूम–हेतु में वह्नि–साध्य की वह्न्यभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति का ज्ञान होने के बाद पर्वत में धूम–साध्य है, इस प्रकार धूम की अनुमिति की आपत्ति होने लगेगी। फलतः अनुमिति में रहने वाली कार्यता एवं व्याप्ति के ज्ञान में रहने वाली कारणता के अवच्छेदक परम्परा में भिन्न–भिन्न साध्यों का भिन्न–भिन्न रूप से निवेश कर उन–उन साध्य वाली अनुमिति में उन–उन साध्य से निरूपित व्याप्ति के ज्ञान को अलग–अलग कारण स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। इस तरह जब साध्य एवं साधन के भेद से हम अनुमिति एवं व्याप्ति ज्ञान में विद्यमान कार्यकारणभाव को अलग मान लेते हैं, तब जिस स्थल में साध्याभाव की अधिकरणता का अवच्छेदक या नियामक जो सम्बन्ध होगा उसका भी स्वरूपत्व या समवायत्व आदि विशेष धर्म से ही व्याप्ति के ज्ञान में रहने वाली कारणता की अवच्छेदक परम्परा में निवेश समुचित

परम्परा में अलग–अलग सम्बन्धों के निवेश से अलग–अलग कार्यकारणभाव मानने में कोई अलग से गौरव होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

माथुरी

न च तथापि घटान्योन्याभाववान् पटत्वादित्यत्रा–न्योन्याभावसाध्यकस्थले घटत्वादिरूपे साध्याभावे न साध्य–प्रतियोगित्वम्, न वा समवायादिसम्बन्धस्तदवच्छेदकः, तादात्म्यस्यैव तदवच्छेदकत्वादित्यव्याप्तिस्तदवस्थेति वाच्यम्; अत्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेन घटभेदस्य घटभेदात्यन्ता–भावत्वावच्छिन्न–प्रतियोगिताकाभावरूपतया घटभेदात्यन्ता–भावरूपस्य घटभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतघटत्वस्यापि समवायसम्बन्धेन घटभेदप्रतियोगित्वात्।

साध्य के अभाव का अधिकरण 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से वच्छिन्न साध्यतावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक जो साध्याभाव इसमें वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध' से ग्राह्य है ऐसा निवेश करने के बाद भी 'घटान्योन्याभाववान् पटत्वात्' इस अन्योन्याभावसाध्य वाले स्थल

होगा। अन्ततः निष्कर्ष यही निकलता है कि विभिन्न स्थलों की व्याप्तियों का एक ही लक्षण वाक्य से कथन करने के लिए विभिन्न साध्यों का साध्य इस पद से एवं साध्याभावाधिकरणता के अवच्छेदक या नियामक विभिन्न स्वरूप समवाय आदि सम्बन्धों का **'साध्यतावच्छेदक–सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्ति–साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध** इस एक शब्द से उल्लेख किया जाता है। इस प्रकार एक लक्षण–वाक्य की दृष्टि से यह कथन कार्यकारणभाव में गौरव का आधायक कथमपि नहीं होता है यह विशेष रूप से यहाँ समझ लेना चाहिए।

में घटत्व रूप साध्याभाव में न तो साध्य की प्रतियोगिता है और न ही समवाय आदि सम्बन्ध प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध है, क्यों कि यहाँ तादात्म्य सम्बन्ध ही प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध होता है। फलस्वरूप अव्याप्ति तदवस्थ है इस प्रकार प्रश्न नहीं करना चाहिए।

अत्यन्ताभाव के अभाव को प्रतियोगी रूप मानने के कारण घटभेद, घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभावत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक अभाव स्वरूप होता है जिस के कारण, घटभेद के अत्यन्ताभाव रूप, घटभेद की प्रतियोगिता का अवच्छेदक घटत्व, भी समवाय सम्बन्ध से घटभेद का प्रतियोगी हो ही जाता है।

साध्य के अभाव का अधिकरण 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्यतावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक जो साध्याभाव इसमें वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध' से ग्राह्य है ऐसा निवेश करने के बाद भी अयं, घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात् इस सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्ति हो जाती है।

इस स्थल में साध्याभाव–घटान्योन्याभावाभाव अर्थात् घटत्व है। साध्याभाव घटत्व में साध्यसामान्य अर्थात् घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अप्रसिद्ध होने[१] से तथा इस प्रतियोगिता के घट में ही मान्य होने से

---

१. जैसे अत्यन्ताभाव का अभाव प्रतियोगी रूप होता है वैसे ही यदि अन्योन्याभाव के अभाव को भी प्रतियोगी रूप ही मानेगे तो अयं, घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात् इस स्थल में साध्याभाव–घटान्योन्याभाव के अभाव अर्थात् घट, में साध्य सामान्य–घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता प्रसिद्ध हो जाएगी अत: प्रतियोगिता की अप्रसिद्धि के कारण हुई अव्याप्ति

'साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्यतावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न

का निवारण अवश्य हो जायेगा परन्तु इस प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध—तादात्म्य सम्बन्ध से साध्य के अभाव का अधिकरण अप्रसिद्ध होने के कारण पुन: आगे लक्षण समन्वय न होने से अव्याप्ति इसी स्थल में बनी रहेगी क्यों कि न्याय दर्शन में तादात्म्य सम्बन्ध को सर्वसम्मति से वृत्तिता का नियामक सम्बन्ध नहीं माना जाता है। यदि इस अव्याप्ति का वारण करने के लिए 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्यतावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक जो साध्याभाव इसमें वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध' से साध्याभाव (का अधिकरण न कह कर) से सम्बद्ध जो उससे निरूपित वृत्तित्व का सामान्याभाव ही व्याप्ति का लक्षण है ऐसा स्वीकार करेंगे तो उपर्युक्त स्थल में तादात्म्य सम्बन्ध से घट स्वरूप साध्याभाव का 'अधिकरण' भले अप्रसिद्ध हो पर 'सम्बद्ध' तो स्वयं घट प्रसिद्ध हो ही जायेगा फलस्वरूप इससे निरूपित वृत्तिता घटत्व में आयेगी तथा वृत्तिता का अभाव सद्धेतु पटत्व में अक्षुण्ण होने से लक्षण का समन्वय होता है तथा अव्याप्ति नहीं होती है यह सहज ही सिद्ध हो जाता है। फिर भी इस लक्षण में अयं (घटत्वम्), घटान्योन्याभाववान्, घटत्वत्वात् यहाँ अव्याप्ति होगी ही। क्यों कि घटान्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव रूप साध्याभाव जैसे घट रूप होता है वैसे ही घटत्व रूप भी होता है, अर्थात् अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव के प्रतियोगी एवं प्रतियोगितावच्छेदक उभय रूप ही, आवश्यक रूप से मानना पड़ता है। इसका कारण यह है कि जहाँ अन्योन्याभाव का प्रतियोगी एक ही व्यक्ति होता है वहाँ अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को प्रतियोगि स्वरूप स्वीकार करने में लाघव स्पष्ट है, जैसे— आकाशभेद के अत्यन्ताभाव को आकाशस्वरूप स्वीकार करने में लाघव होता है परन्तु जहाँ अन्योन्याभाव के प्रतियोगी अनेक होते हैं, परन्तु प्रतियोगिता का अवच्छेदक धर्म एक ही होता है वहाँ अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूप स्वीकार करने में अत्यन्त लाघव होता है, जैसे— घटान्योन्याभाव के प्रतियोगी घट अनन्त हैं पर प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व एक है, फलत:

प्रतियोगिता का निरूपक जो साध्याभाव इसमें वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध' से इस घटत्व स्वरूप साध्याभाव का अधिकरण, प्रसिद्ध नहीं हो सकता है। फलस्वरूप आगे लक्षण का समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष सुस्पष्ट ही है।

इस अव्याप्ति दोष का निवारण करने के लिए मथुरानाथ समाधान देते हुए कहते हैं कि घटत्व में भी घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता है। इसका कारण यह है कि घटत्व में घटत्व के अत्यन्ताभाव की प्रतियोगिता तो सबको निर्विवाद रूप में मान्य है ही तथा घटत्व का अत्यन्ताभाव एवं घट का अन्योन्याभाव, व्यवहार एवं युक्ति के आधार पर एक ही है, फलस्वरूप यदि घटत्व के अत्यन्ताभाव की प्रतियोगिता घटत्व में है तो घटत्व में घट के अन्योन्याभाव की भी प्रतियोगिता प्रसिद्ध है यह स्वत: सिद्ध हो जाता है।

घटत्व का अत्यन्ताभाव एवं घट का अन्योन्याभाव एक कैसे सिद्ध होता है? इस सन्दर्भ में रहस्यकार मथुरानाथ का कथन है कि अत्यन्ताभाव का अत्यन्ताभाव यत: प्रतियोगी स्वरूप होता है अत: प्रस्तुत सन्दर्भ में घटभेद या घट के अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव का अत्यन्ताभाव भी घट के अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी स्वरूप अर्थात् घटान्योन्याभाव या घटभेद स्वरूप होगा। इसी प्रकार यत: घटभेद या घट के अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव

घटान्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को घटत्वरूप स्वीकार करने में लाघव है। इतने विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव के सन्दर्भ में एक सामान्य नियम इस प्रकार सम्भव है कि अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव प्रतियोगि एवं प्रतियोगितावच्छेदक अन्यतरस्वरूप होता है। फलत: उपर्युक्त स्थल में 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्य–तावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक जो साध्याभाव इसमें वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध' तादात्म्य सम्बन्ध से साध्याभाव घट या घटत्व में से घटत्व से सम्बद्ध स्वयं घटत्व ही होगा तथा इसमें वृत्ति ही घटत्वत्व हो जायेगा वृत्तित्वाभाव सद्धेतु घटत्वत्व में नहीं आयेगा परिणामस्वरूप अव्याप्ति का निरास नहीं हो पाता है।

लाघव के कारण घटत्व स्वरूप होता है, अतः पुनः घटभेद या घट के अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव (अर्थात् घटत्व) का अत्यन्ताभाव, घटत्व का अत्यन्ताभाव ही होगा यह सहज ही सिद्ध हो जाता है। अन्ततः यह तथ्य भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि जैसे घटत्वाभाव की प्रतियोगिता घटत्व में है उसी प्रकार घटभेद या घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता समवाय सम्बन्ध से रहने वाले घटत्व में है ही।

फलतः, प्रस्तुत सद्धेतु वाले स्थल में साध्य के अभाव घटत्व में साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के प्रसिद्ध हो जाने से इस प्रतियोगिता के अवच्छेदक समवाय सम्बन्ध से साध्याभाव घटत्व का अधिकरण घट होगा, इस घट से निरूपित वृत्तिता घटत्व में होगी तथा इस वृत्तिता का अभाव सद्धेतु पटत्व में होने के कारण व्याप्ति के लक्षण की अव्याप्ति की आपत्ति सहज ही निरस्त हो जाती है।

माथुरी

न चाऽन्यत्रात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽपि घटादि–भेदात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नाभावो न घटादिभेदस्वरूपः, किन्तु तत्प्रतियोगितावच्छेदकीभूत–घटत्वात्यन्ताभावस्वरूप एवेति सिद्धान्त इति वाच्यम्; यथा हि घटत्वावच्छिन्नघटवत्ताग्रहे घटात्यन्ताभावाग्रहात् घटात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटात्यन्ता–भावाभावो घटस्वरूपः तथा घटभेदवत्ताग्रहे घटभेदात्यन्ताभावाग्रहात् घटभेदात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटभेद एव तदत्यन्ताभावत्वा–वच्छिन–प्रतियोगिताकाभाव इति तत्सिद्धान्तो न युक्तिसह इति।

और जगह अत्यन्ताभावाभाव के प्रतियोगि रूप होने पर भी, घट आदि के भेद के अत्यन्ताभावत्व से अवच्छिन्न (प्रतियोगिता का निरूपक) अभाव, घट आदि के भेद स्वरूप नहीं होता है

किन्तु घटभेद की प्रतियोगिता के अवच्छेदक भूत घटत्व के अत्यन्ताभाव स्वरूप ही होता है, ऐसा सिद्धान्त है यह नहीं माना जा सकता है।

क्यों कि जैसे घटत्व से अवच्छिन्न (विशिष्ट) घटवत्ता का ग्रह होने पर घट के अत्यन्ताभाव का ग्रह नहीं होने से तथा घट के अत्यन्ताभाव के अभाव का व्यवहार होने से घट के अत्यन्ताभाव का अभाव घट स्वरूप होता है, वैसे घटभेदवत्ता का ग्रह होने पर घटभेद के अत्यन्ताभाव का ग्रह नहीं होने से घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव का व्यवहार होने से घट भेद ही घटभेद के अत्यन्ताभावत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक अभाव होता है, यह युक्तिसिद्ध है। यही कारण है कि उपर्युक्त सिद्धान्त युक्ति की कसौटी पर प्रामाणिक नहीं सिद्ध हो पाता है।

घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेद रूप नहीं माना जा सकता है, भले ही घटत्व आदि के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटत्व रूप मानें या घटत्वात्यन्ताभाव के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटत्वात्यन्ताभाव रूप मान लें। घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेद रूप न मान कर घटत्व के अत्यन्ताभाव रूप ही यदि सिद्धान्त रूप में मानेंगे तो पूर्व में प्रदत्त अव्याप्ति, साध्याभाव घटत्व में साध्यसामान्य—घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अप्रसिद्ध होने के कारण पुनः जैसे के तैसे बनी रहेगी। परन्तु ऐसा सिद्धान्त स्वीकार ही नहीं किया जा सकता है।

जब घट एवं घट के अत्यन्ताभाव के अभाव को एक स्वरूप स्वीकार करते हैं अर्थात् घट के अत्यन्ताभाव के अभाव को घट के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी स्वरूप मानते हैं, तब इस सिद्धान्त को मानने के पीछे, प्रामाणिक अनुभव पर आधारित युक्ति होती है।

प्रामाणिकों का यह अनुभव है कि जब किसी स्थान (भूतल आदि) पर घटत्व से विशिष्ट घट होता है तब वहाँ घट के अत्यन्ताभाव का बोध नहीं होता है अर्थात् घट नहीं है ऐसी प्रतीति नहीं होती है तथा घट के अत्यन्ताभाव का अभाव है अर्थात् घट का अत्यन्ताभाव नहीं है यह प्रतीति सहज रूप में होती है। इस प्रतीति में यह देखा जाता है कि जब भूतल में 'घट है' यह व्यवहार होता है तब उस भूतल में 'घट के अत्यन्ताभाव का अभाव है' यह भी व्यवहार होता है, फलतः इस प्रामाणिक व्यवहार के आधार पर घट एवं घट के अत्यन्ताभाव के अभाव को एक मानना युक्तियुक्त सिद्ध होता है।

इस तथ्य को एक लौकिक उदाहरण से भी समझा जा सकता है। यदि समाज में कोई धनाढ्य व्यक्ति होता है तो हम दो तरह से उसके बारे में बातें करते हैं। हम यह कहते हैं कि ''यह व्यक्ति धनवान् है'' साथ ही इसी तथ्य को बताने के लिए हम इसी व्यक्ति के बारे में प्रकारान्तर से यह भी कहते हैं कि ''इस व्यक्ति के पास धन का अभाव नहीं है।'' वास्तव में ये दोनों कथन एक ही तथ्य को प्रकाशित कर रहे होते हैं। परिणामस्वरूप इस व्यवहार के आधार पर हम यह निष्कर्ष या सिद्धान्त स्थापित कर सकते हैं कि 'धन एवं धन के अभाव का अभाव' एक ही बात है।

ठीक इसी प्रकार प्रामाणिकों का यह भी अनुभव है कि जब किसी वस्तु (पट आदि) में घटभेद का बोध होता है तब वहाँ घटभेद के अत्यन्ताभाव का बोध नहीं होता है अर्थात् घटभेद नहीं है ऐसी प्रतीति नहीं होती है तथा घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव है अर्थात् घटभेद का अत्यन्ताभाव नहीं है यह प्रतीति सहज रूप में होती है। इस प्रतीति में यह देखा जाता है कि जब पट आदि में घटभेद है यह व्यवहार होता है तब उस पट आदि में घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव है यह भी व्यवहार होता है, फलतः इस प्रामाणिक व्यवहार के आधार पर घटभेद एवं घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को भी एक मानना ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है।

इस प्रकार घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेद स्वरूप न मानकर घटत्वात्यन्ताभाव स्वरूप मानने का सिद्धान्त आधार हीन ही सिद्ध होता

है। ऐसी स्थिति में अव्याप्ति की तदवस्थता का भी प्रश्न अनायास ही समाहित हो जाता है।

माथुरी

विनिगमकाभावेनापि घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता–कात्यन्ताभावाभाववद् घटभेदस्यापि घटभेदात्यन्ताभावाभावत्व–सिद्धेरप्रत्यूहत्वाच्च। अत एव तादृशसिद्धान्तो न उपाध्यायसम्मतः।

विनिगमक का अभाव होने से (किसी एक पक्ष में युक्ति न होने के कारण) भी घटत्वत्व से अवच्छिन्न (घटत्व में रहने वाली) प्रतियोगिता के निरूपक अत्यन्ताभाव के अभाव की तरह घटभेद भी घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव स्वरूप निष्प्रत्यूह (बिना प्रत्यूह अर्थात् बाधा के) ही सिद्ध हो जाता है।

इसी लिए वैसा सिद्धान्त (घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेद स्वरूप न मानकर घटत्वात्यन्ताभाव स्वरूप मानने का सिद्धान्त) उपाध्याय (गङ्गेश उपाध्याय) को सम्मत नहीं है।

पूर्व अनुच्छेद में व्यवहार के आधार पर जैसे घट एवं घट के अत्यन्ताभाव के अभाव को तथा इसी प्रकार घटभेद एवं घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को एक सिद्ध किया गया, ठीक वैसे ही प्रस्तुत अनुच्छेद में मथुरानाथ तर्कवागीश, विनिगमना अर्थात् '' किसी एक पक्ष को पुष्ट करने वाली युक्ति '' के न होने के आधार पर भी उपर्युक्त तथ्य को ही सम्पुष्ट कर रहे हैं।

घटत्वत्व से अवच्छिन्न घटत्व में रहने वाली प्रतियोगिता के निरूपक अत्यन्ताभाव के अभाव को घटत्वात्यन्ताभाव के प्रतियोगी–घटत्व स्वरूप

मानेंगे, परन्तु घटभेदत्व से अवच्छिन्न घटभेद में रहने वाली प्रतियोगिता के निरूपक अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेदात्यन्ताभाव के प्रतियोगी–घटभेद स्वरूप नहीं मानेंगे इस प्रकार इस एक ही पक्ष को सिद्ध करने वाली कोई युक्ति (विनिगमना) न होने के कारण भी घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव का घटभेद स्वरूप होना, बिना किसी बाधा के सिद्ध हो जाता है।

न्याय शास्त्र के विख्यात विद्वान् अचार्य बदरीनाथ शुक्ल ने इस अनुच्छेद की हिन्दी व्याख्या करते हुए अपना आशय अधो निर्दिष्ट रूप में व्यक्त किया है, जो मेरी दृष्टि में युक्ति युक्त तो अवश्य है परन्तु ग्रन्थारूढ नहीं हो पा रहा है –

''दूसरी बात यह है कि घटभेद का अत्यन्ताभाव घटत्वस्वरूप होता है अत: उसके दो धर्म होते हैं – घटत्वत्व और घटभेदात्यन्ताभावत्व, इन दो रूपों से उसके दो प्रकार के अभाव हो सकते हैं एक घटत्वत्वावच्छिन्न प्रतियोगितानिरूपक अभाव और दूसरा घटभेदात्यन्ताभावत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक अभाव। इनमें प्रथम अभाव सर्वसम्मत है, दूसरे अभाव के सम्बन्ध में यह प्रश्न है कि उसे अतिरिक्त अभाव माना जाय अथवा घटत्वत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक अभाव स्वरूप किं वा घटभेदस्वरूप माना जाय। अतिरिक्त मानने में गौरव स्पष्ट है, अत: उसे उक्त दोनों अभावों में किसी एक अभाव स्वरूप ही मानना होगा ऐसी स्थिति में उसे घटत्वात्यन्ताभावस्वरूप माना जाय या घटभेदस्वरूप माना जाय इसमें कोई विनिगमक–निश्चित रूप से किसी एक को स्वीकार करने में युक्ति, नहीं है। अत: घटत्वात्यन्ताभाव के समान घटभेद में भी घटभेदात्यन्ताभावाभावत्व की सिद्धि निर्बाध है। इसी लिए यह सिद्धान्त है कि अन्य अत्यन्ताभाव का अभाव प्रतियोगीस्वरूप होता है किन्तु घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव घटभेदात्यन्ताभाव के प्रतियोगी घटभेद के स्वरूप नहीं होता किन्तु घटभेद के प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व के अत्यन्ताभाव के स्वरूप होता है, उपाध्याय सम्मत नहीं है।''

आचार्य श्रीशुक्ल जी द्वारा किया गया यह अर्थ जिस ग्रन्थ पर आधारित है वह सम्भवत: इसी ग्रन्थ के कुछ अन्य प्रामाणिक संस्करणों में

अधो निर्दिष्ट रूप में प्राप्त होता है –

माथुरी

विनिगमकाभावेनाऽपि घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता– काभाववद् घटभेदस्यापि घटभेदात्यन्ताभावाभावत्वसिद्धेर– प्रत्यूहत्वाच्च।

इस माथुरी की व्याख्या करते हुए गङ्गा नाम की व्याख्या में स्पष्ट अर्थ इस प्रकार किया गया है–

''अप्रत्यूहत्वाच्चेति। अतर्क्यत्वादित्यर्थः। घटभेदाभावाभावो घटत्वाभावरूपो घटभेदरूपो वेत्यत्र विनिगमनाविरहात्तस्य घटभेदरूपतायां बाधकाभावादिति भावः। अत एव–प्रतीतिबलादेव। न च यथा त्वन्मते विनिगमनाविरहस्तथा मन्मते विनिगमनाविरहाद् घटत्वाभावरूपतापि तस्य स्यादिति वाच्यम्। प्रतीतेरेव गमकत्वात् धर्मिभेदधर्मात्यन्ताभावयोः समनियततया लाघवाच्चैक्येनेष्टापत्तेश्च।''

अस्तु दोनों ही संस्करणों के ग्रन्थों के आधार पर यह तो सिद्ध होता ही है कि घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव जैसे घटत्वाभाव रूप होता है वैसे ही घटभेद स्वरूप भी होता है।

माथुरी

अत एव च अभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगिता इत्याचार्याः, अन्यथा घटभेदात्यन्ताभावप्रतियोगिनि घटभेदे तल्लक्षणाव्याप्त्यापत्तेः अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेद– कघटत्वात्यन्ताभावे तल्लक्षणातिव्याप्त्यापत्तेश्च।

इसी लिए (उक्त प्रामाणिक प्रतीति के कारण ही)

'अभावविरहात्मत्व' ही वस्तु में रहने वाली प्रतियोगिता होती है, ऐसा आचार्य अर्थात् श्री उदयनाचार्य ने (न्यायकुसुमाञ्जलि कारिका में) कहा है। ऐसा न मानने पर घटभेद के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी घटभेद में उसके (प्रतियोगिता के) लक्षण की अव्याप्ति की आपत्ति होगी तथा अन्योन्याभाव के (घट के अन्योन्याभाव के) प्रतियोगितावच्छेदक—घटत्व के अत्यन्ताभाव में उसके (प्रतियोगिता के) लक्षण की अतिव्याप्ति की आपत्ति होगी।

प्रामाणिकों का यह भी अनुभव है कि जब किसी वस्तु (पट आदि) में घटभेद का बोध होता है तब वहाँ घटभेद के अत्यन्ताभाव का बोध नहीं होता है अर्थात् घटभेद नहीं है ऐसी प्रतीति नहीं होती है तथा घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव है अर्थात् घटभेद का अत्यन्ताभाव नहीं है यह प्रतीति सहज रूप में होती है। इस प्रतीति में यह देखा जाता है कि जब पट आदि में घटभेद है यह व्यवहार होता है तब उस पट आदि में घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव है यह भी व्यवहार होता है, फलतः इस प्रामाणिक व्यवहार के आधार पर घटभेद एवं घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को भी एक माना जाता है।

इस प्रतीति मूलक व्यवहार के कारण ही उदयनाचार्य ने अभाव की प्रतियोगिता का लक्षण 'अभावविरहात्मत्व' किया है। विरह[१] का अर्थ अभाव होता है तथा आत्मा का अर्थ होता है स्वरूप, अतः अभावविरहात्मत्व का अर्थ है अभावाभावस्वरूपत्व।

'यस्याभावः सः प्रतियोगी', इस नियम के अनुसार यदि हम घट का अभाव लेते हैं तो इस अभाव का प्रतियोगी घट माना जायेगा। क्यों कि हम जिसका अभाव लेते हैं उस अभाव का प्रतियोगी वही होता है। अब यहाँ प्रश्न यह होता है कि घट के अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी जो घट है उसमें रहने वाली

---

१. लोक में साहित्यिक भाषा में 'विरह' शब्द का अर्थ 'वियोग' होता है पर यहाँ न्याय शास्त्र में विरह शब्द का अर्थ अत्यन्ताभाव माना जाता है।

प्रतियोगिता का क्या लक्षण है? इसका समाधान उदयनाचार्य ने प्रतियोगिता का लक्षण 'अभावविरहात्मत्व' है यह कह कर किया है। यह लक्षण प्रतियोगिता का स्वरूप लक्षण है तथा प्रतियोगी का तटस्थ लक्षण होता है। लक्षण लक्ष्य का असाधारण धर्म होता है। यहाँ प्रतियोगिता घट में है तथा यहीं पर घटाभावाभावस्वरूपता भी सुस्पष्ट है। फलत: प्रतियोगिता एवं घटाभावाभावस्वरूपता की एक रूपता सिद्ध हो जाती है।

यदि घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेद के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी घटभेदस्वरूप नहीं मानेंगे तो उदयनाचार्य के द्वारा स्वीकृत प्रतियोगिता के लक्षण 'अभावविरहात्मत्व' या अभावाभावस्वरूपत्व का घटभेदाभाव के प्रतियोगी घटभेद में समन्वय न होने से अव्याप्ति होगी। अत: इस अव्याप्ति का वारण करने के लिये घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेदस्वरूप भी अनिवार्य रूप से मानना पड़ेगा।

इसी प्रकार घटभेदात्यन्ताभाव की प्रतियोगिता के लक्षण का लक्ष्य घटभेद है तथा अलक्ष्य जो घटत्वाभाव है उसमें इस प्रतियोगिता के लक्षण घटभेदात्यन्ताभावाभावस्वरूपत्व का समन्वय हो जाने से अतिव्याप्ति की भी आपत्ति होने लगती है।

यहाँ घटभेद के प्रतियोगी घट में घटभेद की प्रतियोगिता के लक्षण 'घटभेदाभावस्वरूपत्व' की अव्याप्ति होती है एवं घटभेद के प्रतियोगिता के अवच्छेदक घटत्व में (अलक्ष्य में) इस लक्षण का समन्वय हो जाने से अतिव्याप्ति होती है यह भी समझना चाहिए।

इतनी चर्चा से यह सुस्पष्ट होता है कि जैसे घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटभेदस्वरूप माना जाना अभीष्ट है उसी प्रकार घटभेद के अभाव को भी घटत्वस्वरूप मानने के साथ ही घटस्वरूप भी मानना चाहिए।

माथुरी

न चैवं घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ता–भावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वापत्तिरिति वाच्यम्; तदत्यन्ताभावत्वा–वच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावस्यैव तत्स्वरूपत्वाभ्युपगमात्, तद्वत्ताग्रहे तादृशतदत्यन्ताभावाभावस्यैव व्यवहारात्। उपाध्यायै–र्घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ताभावस्यापि घटभेदस्व–रूपत्वाभ्युपगमाच्च।

इस प्रकार घटत्वत्व से अवच्छिन्न (घटत्व निष्ठ) प्रतियोगिता के निरूपक घटत्व के अत्यन्ताभाव को भी घटभेदस्वरूप मानने की आपत्ति होगी ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिए। उसके अत्यन्ताभावत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक अभाव को ही उस स्वरूप मानते हैं, क्यों कि उस वस्तु का जहाँ ज्ञान होता है वहाँ वैसे अत्यन्ताभाव के अभाव का ही व्यवहार होता है। उपाध्याय के द्वारा घटत्वत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक घटत्व के अत्यन्ताभाव को भी घटभेद स्वरूप माना जाता है।

घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को घटत्वात्यन्ताभाव एवं घटभेदस्वरूप मानने पर घटत्वत्व से अवच्छिन्न (घटत्व निष्ठ) प्रतियोगिता के निरूपक घटत्व के अत्यन्ताभाव को भी घटभेदस्वरूप मानने की आपत्ति होगी, क्यों कि दोनों में घटभेदात्यन्ताभावाभावस्वरूपत्व अथवा घटभेदात्यन्ताभावाभावत्व रूप एक धर्म है। जैसे दो घटों में एक घटत्वरूप धर्म के होने से दोनों में ऐक्य की प्रतीति होती है वैसे यहाँ भी ऐक्य की आपत्ति होने लगेगी यह सन्देह नहीं करना चाहिए।

किसी भी वस्तु के अत्यन्ताभावत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक अभाव को ही उस वस्तु स्वरूप मानने की आप्त परम्परा है। इसके आधार पर घटभेद के अत्यन्ताभावत्व से अवच्छिन्न घटभेदात्यन्ताभाव निष्ठ प्रतियोगिता के निरूपक घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को ही घटभेद स्वरूप माना जा सकता है। जब किसी वस्तु (पट आदि) में घटभेद का बोध होता है तब वहाँ घटभेद के अत्यन्ताभाव का बोध नहीं होता है अर्थात् घटभेद नहीं है ऐसी प्रतीति नहीं होती है तथा घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव है अर्थात् घटभेद का अत्यन्ताभाव नहीं है यह प्रतीति सहज रूप में होती है। इस प्रतीति में यह देखा जाता है कि जब पट आदि में घटभेद है यह व्यवहार होता है तब उस पट आदि में घटभेद के अत्यन्ताभाव का अभाव है यह भी व्यवहार होता है, फलतः इस प्रामाणिक व्यवहार के आधार पर घटभेद एवं घटभेद के अत्यन्ताभाव के अभाव को ही एक माना जा सकता है। इस प्रकार घटत्वात्यन्ताभाव को घटभेद स्वरूप मानने की आपत्ति सम्भव नहीं है।

इस प्रकार उपर्युक्त आपत्ति का वारण करने के अनन्तर इस आपत्ति को इष्ट मान कर भी समाधान प्रस्तुत करते हुए मथुरानाथ कहते हैं कि गङ्गेश उपाध्याय के मत में घटत्व के अत्यन्ताभाव को घटभेदस्वरूप माना भी गया है फलतः उपाध्याय के मत में इष्टापत्ति ही है।

घट को छोड़ कर संसार की सभी वस्तुओं में घट का भेद रहता है। इसी प्रकार घट को छोड़ घटत्व का अत्यन्ताभाव भी संसार में सब जगह रहता है। फलतः दोनों अभाव समान स्थान में रहने वाले हैं अर्थात् समनियत हैं। समनियत रहने वाले दो अभावों को एक मानते हैं इस सिद्धान्त के अनुसार इन दोनों अभावों को एक मानने में कोई कठिनाई नहीं है।

माथुरी

न चैवं साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनैव साध्याभावाधिकरणत्वं विवक्ष्यतां किं साध्यतावच्छेदक– सम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तित्वस्य प्रतियोगिताविशेषणत्वेनेति

वाच्यम्, कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारक– प्रमाविशेष्यत्वा– भावस्य विशेषणताविशेषेण साध्यत्वे आत्मत्वादिहेतावव्याप्त्यापत्तेः, कालिकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य विशेषणताविशेषेण योऽभावस्तस्यापि साध्यस्वरूपतया कालिकसम्बन्धवद्विशेषणता– विशेषोऽपि साध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धस्तेन सम्बन्धेनात्म– त्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वरूपसाध्याभाववति आत्मनि हेतोरात्म– त्वस्य वृत्तेः।

साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से ही साध्याभाव का अधिकरण कहें, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाव– वृत्तित्व को प्रतियोगिता के विशेषण के रूप में क्यों मानते है? यह प्रश्न नहीं करना चाहिए, क्यों कि ऐसा न करने से कालिकसम्बन्धावच्छिन्न आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभाव को विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से साध्य करने पर आत्मत्व आदि हेतु में अव्याप्ति की आपत्ति होने लगती है। कालिक सम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्याभाव का विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूपसम्बन्ध से जो अभाव उसके भी साध्यस्वरूप होने से कालिकसम्बन्ध की तरह विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूप– सम्बन्ध भी साध्यीय प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध होगा, इस सम्बन्ध से आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वरूप साध्याभाव वाले आत्मा में हेतु आत्मत्व के वृत्ति होने से अव्याप्ति सुस्पष्ट है।

अब तक की चर्चा के अनुसार व्याप्ति के लक्षण में, साध्य के अभाव का अधिकरण 'साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेकावच्छि– न्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से लेना

है यह निर्णय लिया गया है। पर्वतः, वह्निमान्, धूमात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में साध्य वह्नि है, साध्य का अभाव वह्नि का अभाव हुआ। इस वह्नि के अभाव का अधिकरण, साध्यता के अवच्छेदक संयोग सम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्यता के अवच्छेदक वह्नित्व धर्म से अवच्छिन्न वह्नि में रहने वाली प्रतियोगिता के निरूपक अभाव—वह्नि के अभाव में वृत्ति जो साध्य सामान्य—वह्नि के अभाव के अभाव रूप साध्य—वह्नि की प्रतियोगिता उसके अवच्छेदक सम्बन्ध—स्वरूप सम्बन्ध से, जलह्रद आदि होता है। इस अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व मीन शैवाल आदि में है तथा वृत्तित्व का अभाव धूम रूप सद्धेतु में होने से लक्षण समन्वय हो जाता है।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि साध्य के अभाव का अधिकरण यदि केवल साध्यसामन्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से लें तब भी उपर्युक्त सद्धेतु वाले स्थल में साध्य सामान्य—वह्नि के अभाव के अभाव रूप साध्य—वह्नि की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध—स्वरूप सम्बन्ध से अधिकरण जलह्रद आदि ही होता है। इस अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व मीन शैवाल आदि में है तथा वृत्तित्व का अभाव धूम रूप सद्धेतु में होने से लक्षण समन्वय हो जाने के कारण साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक—साध्याभाववृत्तित्व यह विशेषण साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता में देना निरर्थक है।

पर यहाँ यह प्रश्न नहीं करना चाहिए क्यों कि कालिकसम्बन्धावच्छिन्न आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभाव को विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से साध्य करने पर आत्मत्व आदि सद् हेतु में व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने से अव्याप्ति की आपत्ति होने लगती है। सामान्य रूप से आत्मत्व प्रकार है जिस प्रमा में ऐसी प्रमा का आकार होता है 'आत्मा'। जैसे 'घटः' इस प्रमा में घटत्व प्रकार होता है तथा घट विशेष्य होता है, वैसे ही 'आत्मा' इस प्रमात्मक ज्ञान में आत्मत्व प्रकार होता है तथा आत्मा विशेष्य होता है। इस प्रकार आत्मत्व है प्रकार जिस प्रमा में ऐसी प्रमा की विशेष्यता अर्थात् 'आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता' स्वरूप सम्बन्ध से आत्मा में रहेगी। परन्तु यह आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता कालिक सम्बन्ध से कभी भी आत्मा में नहीं रह

सकती क्यों कि न्याय दर्शन के अनुसार नित्य पदार्थों में कोई भी पदार्थ कालिक सम्बन्ध से नहीं रहता है।[१] एतावता आत्मा आदि नित्य पदार्थों में आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का कालिक सम्बन्ध से अभाव स्वरूप सम्बन्ध से अवश्य रहेगा। आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव को ही हम दूसरे शब्दों में 'कालिकसम्बन्धावच्छिन्न आत्मत्वप्रकारक–प्रमाविशेष्यत्वाभाव' भी कह सकते हैं; कालिक सम्बन्धावच्छिन्न–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता में रहने वाली जो प्रतियोगिता उस प्रतियोगिता का निरूपक अभाव इसका तात्पर्य होता है। इतनी चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा, कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभाववान्, आत्मत्वात् यह सद्धेतुक स्थल है। क्यों कि जहाँ–जहाँ आत्मत्व हेतु रहता है वहाँ–वहाँ कालिकसम्बन्ध से अवच्छिन्न आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभाव–साध्य; स्वरूप सम्बन्ध से रहता है।

इस सद्धेतु वाले स्थल में आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का जो कालिक सम्बन्ध से अभाव उसका जो कालिक सम्बन्ध से अभाव उसका पुन: जो विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से अत्यन्ताभाव वह आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव रूप अर्थात् साध्य स्वरूप होगा। आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का जो कालिक सम्बन्ध से अभाव उसका जो कालिक सम्बन्ध से अभाव उसका पुन: जो विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से अत्यन्ताभाव, यह भी यत: साध्य है अत: इसकी प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध स्वरूपसम्बन्ध होगा तथा इस स्वरूप सम्बन्ध से अर्थात् साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से साध्याभाव–कालिकसम्बन्धावच्छिन्न आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभाव का जो स्वरूपसम्बन्ध से अभाव जो आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वरूप होता है, उसका अधिकरण आत्मा हो जायेगा। इस साध्याभाव के अधिकरण में आत्मत्व के वृत्ति होने से अव्याप्ति दोष हो जाता है।

---

१. नित्येषु कालिकायोगात्।

इस अव्याप्ति का निराकरण करने के लिए केवल साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण नहीं कहा जा सकता है, अपितु साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता में साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न–प्रतियोगिताक–साध्याभाववृत्तित्व भी विशेषण देना आवश्यक होता है।

आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का कालिक सम्बन्ध से अभाव जैसे साध्य है वैसे ही आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का जो कालिक सम्बन्ध से अभाव उसका जो कालिक सम्बन्ध से अभाव उसका पुन: जो विशेषणताविशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से अत्यन्ताभाव वह भी साध्य अवश्य है क्यों कि किसी भी वस्तु का तृतीय अभाव प्रथम अभाव स्वरूप होता है। परन्तु इस साध्य की प्रतियोगिता, आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव के कालिक सम्बन्ध से अभाव में है, जो कि साध्याभाव नहीं है, क्यों कि साध्याभाव–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव का स्वरूप सम्बन्ध से अभाव होता है जो आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता रूप होता है। इस प्रकार ऐसे साध्याभाव में वृत्ति जिस साध्यसामान्य की प्रतियोगिता होगी वह आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का कालिक सम्बन्ध से अभाव ही होगा।[१] इस अभाव की प्रतियोगिता कालिकसम्बन्धावच्छिन्न आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता में है।

---

१. आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का कालिक सम्बन्ध से अभाव, स्वरूप सम्बन्ध से साध्य है। साध्यतावच्छेदकस्वरूपसम्बन्ध से अवच्छिन्न एवं साध्यतावच्छेदक–कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावत्व–धर्म से अवच्छिन्न जो प्रतियोगिता उसका निरूपक जो साध्य का अभाव–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव (साध्य) का स्वरूप सम्बन्ध से अभाव, साध्याभाव है। किसी भी वस्तु के अत्यन्ताभाव का अभाव उस वस्तु स्वरूप ही होता है, अथवा दूसरे शब्दों में उस वस्तु के अभाव के प्रतियोगी (वस्तु) स्वरूप होता है, यह सर्वमान्य नियम है। इस नियम के अनुसार प्रस्तुत साध्याभाव–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता स्वरूप हो जायेगा। इस साध्याभाव में साध्य–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव की

प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध कालिक सम्बन्ध होता है। इस कालिक सम्बन्ध से साध्याभाव–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का अधिकरण आत्मा कथमपि नहीं हो सकेगा कोई अनित्य पदार्थ घट पट आदि ही साध्याभाव के अधिकरण के रूप में मिलेगा। साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तिता घटत्व पटत्व आदि में होगी, तथा इस वृत्तिता का अभाव आत्मत्व हेतु में सुलभ होने से लक्षण समन्वय हो जाता है। फलस्वरूप अव्याप्ति दोष का निवारण हो जाता है।

प्रतियोगिता अक्षुण्ण है। इस प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध–कालिक सम्बन्ध है क्यों कि आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता (प्रतियोगी) का कालिक सम्बन्ध से अभाव–साध्य है।

आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता का कालिक सम्बन्ध से अभाव, स्वरूप सम्बन्ध से साध्य है। साध्यतावच्छेदकस्वरूपसम्बन्ध से अवच्छिन्न एवं साध्यतावच्छेदक–कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावत्व–धर्म से अवच्छिन्न जो प्रतियोगिता उसका निरूपक जो साध्य का अभाव–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव (साध्य) का स्वरूप सम्बन्ध से अभाव, साध्याभाव है। इस साध्याभाव–आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव (साध्य) के स्वरूप सम्बन्ध से अभाव का जो कालिक सम्बन्ध से पुनः अभाव होगा वह भी साध्य सामान्य ही होगा। इसकी प्रतियोगिता, आत्मत्व–प्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव (साध्य) के स्वरूप सम्बन्ध से अभाव में रहेगी तथा प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध कालिक सम्बन्ध ही होगा क्यों कि आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यता के कालिक सम्बन्ध से अभाव (साध्य) के स्वरूप सम्बन्ध से अभाव का कालिक सम्बन्ध से अभाव ही साध्य होता है। इस तरह साध्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध किसी भी तरह कालिक सम्बन्ध ही होगा, फलस्वरूप अव्याप्ति का वारण सम्भव हो पाता है।

माथुरी

प्रतियोगितावच्छेदकवत् प्रतियोग्यप्यन्योन्याभावाभावः, तेन तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगित्वस्य नाप्रसिद्धिः।

प्रतियोगितावच्छेदक की तरह प्रतियोगी (रूप) भी अन्योन्याभाव का अभाव होता है। ऐसा मानने से, तादात्म्य सम्बन्ध से साध्यता की स्थिति में साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्याभाव में वृत्ति साध्य सामान्य की प्रतियोगिता की अप्रसिद्धि नहीं होती है।

किसी भी वस्तु के अन्योन्याभाव का अभाव जैसे उस वस्तु के अन्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक स्वरूप होता है, उसी तरह उस वस्तु के अन्योन्याभाव के प्रतियोगी स्वरूप भी होता है। उदाहरणार्थ घट के अन्योन्याभाव का अभाव जैसे घट के अन्योन्याभाव की घट में रहने वाली प्रतियोगिता के अवच्छेदक धर्म घटत्व स्वरूप होता है, वैसे ही घट के अन्योन्याभाव के प्रतियोगी घट स्वरूप भी होता है।

पूर्व प्रदर्शित रीति से यदि किसी वस्तु के अन्योन्याभाव के अभाव को मात्र उस वस्तु की प्रतियोगिता के अवच्छेदक घटत्व आदि धर्म स्वरूप ही मानेगे तो 'अयं, घटवान्, एतत्त्वात्' इस सद्धेतु वाले स्थल में सद्धेतु एतत्त्व में व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने से अव्याप्ति दोष की आपत्ति होगी।

इस स्थल में अयं इस पद का अर्थ समक्ष स्थित घट ही पक्ष है। इस पक्ष में तादात्म्य सम्बन्ध से स्वयं घट ही साध्य है। इसी घट में विद्यमान एतत्त्व स्वरूप सम्बन्ध से हेतु है। इस प्रकार जहाँ–जहाँ घट में एतत्त्व है वहाँ–वहाँ घट में तादात्म्य सम्बन्ध से घट के रहने से यह सद्धेतु वाला स्थल है यह निर्विवाद रूप में सिद्ध होता है।

इस सद्धेतु वाले स्थल में व्याप्ति के इस प्रथम लक्षण का समन्वय नहीं होता है। यहाँ साध्याभाव तादात्म्य सम्बन्ध से घट का अभाव अर्थात् घटान्योन्याभाव होता है। इस साध्याभाव का अधिकरण 'साध्यतावच्छेदक–सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाव वृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध' से लेना अभीष्ट है। परन्तु प्रस्तुत स्थल में साध्याभाव–घटान्योन्याभाव में घटान्योन्याभाव के स्वरूपसम्बन्ध से अभाव का मात्र घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक घटत्व स्वरूप मानने पर घटत्व की ही प्रतियोगिता माननी होगी तथा घटत्व के साध्य न होने से यह साध्याभाव में रहने वाली साध्यसामान्य घट की प्रतियोगिता नहीं मानी जा सकेगी। फलतः साध्याभाव घटान्योन्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्य घट की प्रतियोगिता के अप्रसिद्ध होने से साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगिता–वच्छेदकसम्बन्ध से साध्याभाव का अधिकरण अप्रसिद्ध हो जाता है। फलतः उपर्युक्त स्थल में अव्याप्ति दोष सुस्थिर हो जाता है।

इस अव्याप्ति दोष का निवारण घटान्योन्याभाव के स्वरूप सम्बन्ध से अभाव को घटान्योन्याभाव के प्रतियोगी घट स्वरूप भी मान लेने से अनायास ही हो जाता है। इस प्रकार अयं, घटवान्, एतत्त्वात् इस सद्धेतु वाले स्थल में अब साध्याभाव–घटान्योन्याभाव का साध्याभावघटान्योन्याभाव में वृत्ति घटान्योन्याभाव के स्वरूप सम्बन्ध से अभाव–घट अर्थात् साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक स्वरूप सम्बन्ध से अधिकरण पट आदि प्रसिद्ध हो जाता है। इस अधिकरण से निरूपित वृत्तिता पटत्व में है न कि एतत्त्व हेतु में इस प्रकार हेतु एतत्त्व में साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तिता का अभाव अक्षत होने से लक्षण समन्वय निराबाध ही हो जाता है।

माथुरी

इत्थञ्च अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेनापि साध्यसामान्यीय–प्रतियोगिता विशेषणीया, अन्यथा घटान्योन्याभाववान् घटत्वत्वादित्यादौ अव्याप्त्यापत्तेः तादात्म्यसम्बन्धस्यापि साध्या–

भाववृत्तिसाध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकत्वात्।

इस प्रकार अत्याभावत्वनिरूपितत्व से भी साध्यसामान्य की प्रतियोगिता को विशेषित करना चाहिए। ऐसा न करने पर घटान्योन्याभाववान् घटत्वत्वात्, इत्यादि स्थल में अव्याप्ति की आपत्ति होगी, क्यों कि तादात्म्य सम्बन्ध भी साध्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता का अवच्छेदक होता है।

किसी वस्तु के अन्योन्याभाव के अभाव को उस वस्तु के अन्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक धर्मस्वरूप जैसे मानते हैं वैसे ही उस वस्तु के अन्योन्याभाव के प्रतियोगी स्वरूप भी यदि मानेंगे तो साध्याभाव का अधिकरण जिस सम्बन्ध (साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न–प्रतियोगिताक साध्याभाववृत्ति साध्य–सामन्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध) से लेना है उस सम्बन्ध के अन्तर्गत आये 'साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता' में 'अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्व' यह विशेषण देना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार साध्याभाव का अधिकरण साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय अत्यन्ताभावत्वनिरूपित प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से लेना है यह निर्णीत होता है।

यदि साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता में अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्व विशेषण नहीं देंगे तो अयम्, घटान्योन्याभाववान्, घटत्वत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्ति दोष की आपत्ति होने लगेगी। यह स्थल सद्धेतु वाला स्थल है क्यों कि जहाँ–जहाँ घटत्व में घटत्वत्व हेतु स्वरूप सम्बन्ध से रहता है वहाँ–वहाँ घटत्व में स्वरूप सम्बन्ध से साध्य–घटान्योन्याभाव भी रहता है।

इस स्थल के सद्धेतु–घटत्वत्व में साध्याभाव–घटान्योन्याभावाभाव–घटत्व का, साध्यतावच्छेदक–स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–घटान्योन्याभावत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाव–घटान्योन्याभावाभाव–घट

वृत्ति साध्यसामान्यीय (घटान्योन्याभावीय) प्रतियोगिता के अवच्छेदक तादात्म्य सम्बन्ध से अधिकरण, घटत्व ही हो जायेगा। इस अधिकरण घटत्व से निरूपित स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता ही घटत्वत्व सद्धेतु में होने के कारण अव्याप्ति सुस्पष्ट ही है।

जब साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता में अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्व विशेषण दे देते हैं तब उपर्युक्त स्थल में साध्याभाव—घटान्योन्याभावाभाव—घट (प्रतियोगी) एवं घटत्व (प्रतियोगितावच्छेदक) दोनों में से घटत्वरूप साध्याभाव में रहने वाली प्रतियोगिता ही मिलती है क्यों कि यह प्रतियोगिता ही अत्यन्ताभावत्व से निरूपित होती है।[१] अभाव की जो प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्ध से अवच्छिन्न नहीं होती है वही प्रतियोगिता अत्यन्ताभावत्व से निरूपित होती है[२] तथा अभाव की जो प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्ध से अवच्छिन्न होती है वह अन्योन्याभावत्व से निरूपित मानी जाती है।[३] साध्याभाव घटत्व में रहने वाली अत्यन्ताभावत्व से निरूपित प्रतियोगिता का अवच्छेदक सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध होता है। इस समवाय सम्बन्ध से साध्याभाव—घटत्व का अधिकरण घट होता है न कि घटत्व। घट से निरूपित स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता

---

१. किसी भी वस्तु के अन्योन्याभाव का अभाव जैसे उस वस्तु के अन्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक धर्म स्वरूप होता है वैसे ही उस वस्तु के अन्योन्याभाव के प्रतियोगी स्वरूप भी होता है यह सिद्धान्त इस मत में मान्य है। जैसे घट के अन्योन्याभाव का अभाव घट के अन्योन्याभाव के प्रतियोगी—घट एवं प्रतियोगिता के अवच्छेदक—घटत्व स्वरूप होता है। यहाँ साध्याभाव—घट अथवा घटत्व में साध्यसामान्य—घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता है। घट मे जो घटान्योन्याभावाभावाभाव रूप घटान्योन्याभाव की प्रतियोगिता है वह अन्योन्याभावत्व से निरूपित है। इसी प्रकार घटत्व में जो घटान्योन्याभावाभावाभाव स्वरूप घटत्वाभाव की प्रतियोगिता है वह अत्यन्ताभावत्व से निरूपित है यह सुस्पष्ट है।

२. प्रतियोगितायां तादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नत्वम् अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वम्।

३. प्रतियोगितायां तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्वमेव अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वम्।

पटत्वाभाव आदि में आती है तथा वृत्तिता का अभाव सद्धेतु घटत्वत्व में निराबाध होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय सहज रूप में हो जाता है। फलस्वरूप घटत्वत्व सद्धेतु में हुई अव्याप्ति की आपत्ति निरस्त हो जाती है।

माथुरी

यद्वा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्ति—साध्यसामान्यीयनिरुक्तप्रतियोगित्वतदवच्छेदकत्वान्यतरा—वच्छेदकसम्बन्धेनैव साध्याभावधिकरणत्वं विवक्षणीयम्, वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणम्; एवञ्च घटान्योन्याभाववान् पटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेः साध्यीयप्रतियोगित्व—विरहेऽपि न क्षतिः। तादृशान्यतरस्य साध्यीयप्रतियोगिता—वच्छेदकत्वस्यैव तत्र सत्त्वात्।

अथवा साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगित्व, इस प्रतियोगिता के अवच्छेदकत्व इन दोनों में से किसी एक के अवच्छेदक सम्बन्ध से साध्य के अभाव का अधिकरण विवक्षित है। वृत्त्यन्त भाग अन्यतर में विशेषण है; इस प्रकार घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्, इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में साध्याभाव घटत्व आदि में साध्यीय प्रतियोगित्व के अभाव हाने पर भी कोई क्षति नहीं होती है, वैसे अन्यतर में से साध्यीयप्रतियोगिता के अवच्छेदत्व के वहाँ अक्षत होने से।

किसी भी भाव पदार्थ के अत्यन्ताभाव का अभाव भावपदार्थ के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी—भावपदार्थ रूप होता है, परन्तु अन्योन्याभाव रूप अभाव—पदार्थ के अत्यन्ताभाव का अभाव अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव के

प्रतियोगी अभाव पदार्थ–अन्योन्याभाव पदार्थ रूप नहीं होता है। अन्योन्याभाव रूप अभाव पदार्थ के अत्यन्ताभाव का अभाव अन्योन्याभाव–भेद के प्रतियोगितावच्छेदक के अत्यन्ताभाव स्वरूप ही होता है।

उदाहरणार्थ घट के अत्यन्ताभाव का अभाव घट के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी घट स्वरूप होता है, परन्तु घटान्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव का अभाव घटान्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी घटान्योन्याभाव रूप नहीं होता है अपितु घटान्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव का अभाव घटान्योन्याभाव–घटभेद के प्रतियोगितावच्छेदक–घटत्व के अत्यन्ताभाव स्वरूप ही होता है।

यह सिद्धान्त मानने पर घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्, इस तरह के अन्योन्याभाव साध्य वाले सभी सद्धेतुक स्थल में साध्याभाव–घटान्योन्याभाव के अभाव–घटत्व में साध्यसामान्य–घटान्योन्यभाव की प्रतियोगिता के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति दोष होगा ही।

इस दोष का निवारण करने के लिए व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव का अधिकरण, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न–प्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्ति–साध्यसामान्यीय– निरुक्त प्रतियोगित्व–तदवच्छेदकत्व–एतदन्यतरावच्छेदकसम्बन्ध से ही लेना होगा। अन्यतर का अर्थ होता है दो में से कोई एक। यहाँ पर दो हैं–साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा–वच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय निरुक्त प्रतियोगित्व एवं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न–साध्यतावच्छेद–कावच्छिन्न–प्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्ति–साध्यसामान्यीयनिरुक्त प्रतियोगिता–वच्छेदकत्व। इन दोनों में से किसी एक के अवच्छेदक सम्बन्ध से साध्य के अभाव का अधिकरण लेना यहाँ अभीष्ट है।

घटान्योन्याभाववान्, पटत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में साध्यता–वच्छेदकस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकघटान्योन्याभावत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकसाध्याभाव–घटान्योन्याभावाभाव अर्थात् घटत्व में वृत्ति साध्यसामान्यीय अर्थात् घटान्योन्याभावसामान्यीय निरुक्त प्रतियोगित्व के अप्रसिद्ध होने पर भी

साध्यतावच्छेदकस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकघटान्योन्याभावत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकसाध्याभाव–घटान्योन्याभावाभाव अर्थात् घटत्व में वृत्ति साध्यसामान्यीय अर्थात् घटान्योन्याभावसामान्यीय निरुक्त प्रतियोगिता के अवच्छेदकत्व के प्रसिद्ध हो जाने से इस प्रतियोगिता की अवच्छेदकता के अवच्छेदक सम्बन्ध–समवाय सम्बन्ध से साध्याभाव–घटान्योन्याभावाभाव अर्थात् घटत्व का अधिकरण घट होगा। इस घट से निरूपित वृत्तिता घटत्व में होगी तथा वृत्तिता का अभाव पटत्व सद्धेतु में अक्षुण्ण होने से लक्षण समन्वय निराबाध हो जाता है, फलतः अव्याप्ति दोष का निवारण सरलता से हो जाता है।

माथुरी

न च तथापि कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्ति–साध्यकसद्धेतौ अव्याप्तिरिति वाच्यम्; निरुक्तसाध्याभाव–त्वविशिष्टनिरूपिता या निरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्नाधि–करणता तदाश्रयावृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात्। गुणकर्मान्य–त्वविशिष्टसत्त्वाभाववान् गुणत्वादित्यादौ सत्त्वात्मकसाध्याभावा–धिकरणत्वस्य गुणादिवृत्तित्वेऽपि साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता–धिकरणत्वस्य गुणाद्यवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः।

इतना परिष्कार करने के बाद भी 'कपिसंयोगी, एतद्वृक्षत्वात्' इत्यादि अव्याप्यवृत्ति साध्य वाले सद्धेतु में अव्याप्ति होगी, यह नहीं कहा जा सकता है; क्यों कि पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व विशिष्ट से निरूपित जो पूर्वपरिष्कृत सम्बन्ध संसर्ग वाली निरवच्छिन्न अधिकरणता उसके आश्रय से निरूपित अवृत्तित्व ही यहाँ (व्याप्ति के लक्षण के रूप में) विवक्षित है। गुणकर्मान्यत्व (गुण एवं कर्म के अन्यत्व–भेद से) विशिष्ट सत्त्वाभाववान्, गुणत्वात् इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में सत्त्व–सत्ता रूप साध्याभाव की

अधिकरणता के गुण आदि में रहने पर भी साध्याभावत्व से विशिष्ट से निरूपित अधिकरणता के गुण आदि में अवृत्ति होने से अव्याप्ति नहीं होती है।

अब तक की चर्चा से व्याप्ति का लक्षण परिष्कृत स्वरूप में इस प्रकार निष्पन्न होता है— साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न, प्रतियोगिता के निरूपक साध्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध से अथवा साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न, प्रतियोगिता के निरूपक साध्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्य की प्रतियोगिता की अवच्छेदकता के अवच्छेदक सम्बन्ध से जो साध्य के अभाव का अधिकरण उससे निरूपित वृत्तित्व का अभाव।[१]

इस व्याप्ति के परिष्कृत लक्षण की भी अव्याप्ति 'अयं, कपिसंयोगी, एतद्वृक्षत्वात्' इस सद्धेतु वाले स्थल में होती है। अव्याप्ति दोष समझने से पूर्व इस स्थल की विशेषता के साथ–साथ यह समझना आवश्यक है कि यह सद्धेतु वाला स्थल कैसे सिद्ध होता है। कोई वृक्ष विशेष है जिस पर बन्दर बैठे हुए हैं यद्यपि ऐसे वृक्ष भी सम्भव हैं जिस पर एक भी बन्दर न बैठा हो परन्तु यहाँ वही वृक्ष पक्ष के रूप में अभीष्ट है जिसे हम अयं शब्द से अँगुली से निर्देश करते हुए दिखा रहे हैं, जहाँ बन्दर बैठे हुए दीख रहे हैं। ऐसे वृक्ष में हेतु–एतद्वृक्षत्व है तथा इस वृक्ष में कपि अर्थात् बन्दर का संयोग भी शाखा में स्पष्ट दीखता है। फलतः जहाँ–जहाँ हेतु–एतद्वृक्षत्व है वहाँ–वहाँ साध्य–कपिसंयोग के होने से यह सद्धेतु वाला स्थल है यह निर्णीत होता है।

इस स्थल में एक विशेष और ध्यान देने योग्य है कि साध्य कपिसंयोग एतद्वृक्ष में रहता भी है और नहीं भी रहता है। यही कारण है कि इसे

१. साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक–साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगित्वतदवच्छेदकत्व एतदन्यतरावच्छेदक–सम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः।

अव्याप्यवृत्ति साध्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। एतद्वृक्ष में हर जगह व्याप्य हो कर कपिसंयोग नहीं रहता है। कपिसंयोग वृक्ष में शाखा में होता है तो वृक्ष में ही मूल में नहीं होता है। फलत: वृक्ष में कपिसंयोग भी है तथा कपि के संयोग का अभाव भी है यह स्पष्ट है।

अयं पद के अर्थ सामने स्थित एतद् वृक्ष में कपि का संयोग समवाय सम्बन्ध से साध्य है तथा एतद्वृक्षत्व समवाय सम्बन्ध से हेतु है। इस सद्धेतु वाले स्थल में साध्य—कपिसंयोग के अभाव का 'साध्यतावच्छेदकसमवाय सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक कपिसंयोगत्व धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाव—कपिसंयोगाभाव वृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध—स्वरूप सम्बन्ध' से अधिकरण मूलावच्छेदेन अर्थात् मूल में वृक्ष भी हो जाएगा। इस साध्याभाव के अधिकरण में एतद्वृक्षत्व हेतु के समवाय सम्बन्ध से वृत्ति होने से वृत्तित्वाभाव स्वरूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने से इस परिष्कृत व्याप्ति के लक्षण में भी अव्याप्ति दोष हो जाता है।

इस अव्याप्ति दोष का निवारण करने के लिये, साध्यता के अवच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यता के अवच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक साध्याभावत्वविशिष्ट से निरूपित जो 'साध्यतावच्छेदकसमवाय सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक कपिसंयोगत्व धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाव—कपिसंयोगाभाव वृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता के अवच्छेदक सम्बन्ध—स्वरूप सम्बन्ध, से निरवच्छिन्न अधिकरणता उस अधिरणता वाले अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व के अभाव को व्याप्ति के लक्षण के रूप में परिष्कृत करना पड़ता है। ऐसा परिष्कार कर देने के उपरान्त उपर्युक्त साध्याभाव—कपिसंयोगाभाव का मूलावच्छिन्न अधिकरण भले ही एतद्वृक्ष हो जाए पर निरवच्छिन्न अधिकरण तो गुण आदि ही होगा तथा गुण आदि में एतद्वृक्षत्व रूप हेतु के अवृत्ति होने से लक्षण समन्वय निराबाध हो जाने से अव्याप्ति दोष का परिहार हो जाता है।

यद्यपि अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्ति दोष का वारण साध्याभाव की निरवच्छिन्नाधिकरणता के निवेश मात्र

से हो जाता है। साध्याभावत्वविशिष्ट निरूपित अधिकरणता के निवेश का कोई औचित्य आपाततः प्रतीत नहीं होता है फिर भी साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितत्व अधिकरणता में विशेषण नहीं देने पर 'गुणः, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वाभाववान्, गुणत्वात्' इस सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्ति होती है, जिसका निवारण करने के लिये साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितत्व का निवेश अधिकरणता में आवश्यक रूप से अपेक्षित होता है।

'गुणः, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वाभाववान्, गुणत्वात्' यह सद्धेतु वाला स्थल है, यहाँ पर गुण पक्ष है, गुणकर्मभेदविशिष्ट सत्ता का अभाव स्वरूपसम्बन्ध से साध्य है तथा गुणत्व समवाय सम्बन्ध से हेतु है। गुणत्व समवाय सम्बन्ध से जहाँ—जहाँ गुणों में रहता है वहाँ—वहाँ सब जगह गुणकर्मभेदविशिष्टसत्ता का अभाव होता है, क्यों कि गुणकर्मभेद अर्थात् गुण का भेद एवं कर्म का भेद दोनों से विशिष्ट सत्ता वही सत्ता होती है, जो गुण के भेद एवं कर्म के भेद के अधिकरण में रहती है। सत्ता नाम की जाति द्रव्य, गुण एवं कर्म में होती है। कर्म में जो सत्ता होती है वह गुण के भेद से विशिष्ट होती है क्यों कि कर्म में गुण का भेद भी होता है और सत्ता भी होती है। परन्तु यह कर्म में रहने वाली सत्ता, गुण के भेद एवं कर्म के भेद दोनों से विशिष्ट नहीं होती है क्यों कि कर्म में गुण का भेद होने पर भी कर्म का भेद नहीं होता है।

इसी प्रकार गुण में जो सत्ता है, वह कर्म के भेद से विशिष्ट है, क्यों कि गुण में कर्म का भेद होता है, परन्तु गुण में गुण का भेद न होने के कारण गुण में रहने वाली सत्ता कर्म भेद एवं गुण भेद दोनों से विशिष्ट सत्ता नहीं होती है। गुणभेद कर्मभेद इन दोनों भेदों से विशिष्ट सत्ता द्रव्य में होती है, क्यों कि द्रव्य में रहने वाली सत्ता के अधिकरण द्रव्य में गुण का भेद एवं कर्म का भेद दोनों होते हैं। इस प्रकार गुणभेद एवं कर्मभेद से विशिष्ट या गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता द्रव्य में ही रहती है तथा ऐसी सत्ता का अभाव गुण एवं कर्म में होता है। फलतः समवाय सम्बन्ध से गुणत्व जहाँ—जहाँ गुणों में रहता है वहाँ—वहाँ सब जगह गुणकर्मान्यत्व अथवा गुणकर्मभेद से विशिष्ट सत्ता का अभाव होने से यह स्थल सद्धेतु वाला स्थल सिद्ध होता है। इस स्थल

में अव्याप्ति इस प्रकार होती है—

इस सद्धेतु वाले स्थल में गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाव साध्य है। साध्याभाव—गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वाभावाभाव होता है। यह साध्याभाव गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वाभाव के प्रतियोगी—गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्व स्वरूप होता है। इस गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्व का अधिकरण गुण भी हो जाता है। इस गुण से निरूपित वृत्तित्व ही गुणत्व रूप सद्धेतु में रहने से अव्याप्ति सुस्पष्ट है। गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता एवं शुद्धसत्ता के एक होने से सत्ता रूप साध्याभाव का अधिकरण गुण बिना किसी बाधा के हो जाता है। गुण, सत्ता रूप साध्याभाव का निरवच्छिन्न अधिकरण है यह भी करतलामलकवत् अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। कभी भी सत्ता गुण में किसी हिस्से में हो तथा किसी हिस्से में न हो ऐसा नहीं देखा जाता है। सत्ता सदा गुण में हर जगह व्याप्त होती है यह सभी विद्वानों का मत है।

इस प्रकार सत्ता रूप साध्याभाव के निरवच्छिन्न अधिकरण गुण में गुणत्व के रहने से जो अव्याप्ति दोष होता है उसका वारण करने के लिये अधिकरणता में साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितत्व यह विशेषण भी देना आवश्यक हो जाता है। गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभावाभाव एवं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता एक है, इस लिये गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता साध्याभाव है ऐसा मान्य है। इस साध्याभाव में विद्यमान धर्म ही साध्याभावत्व होगा। और यह धर्म प्रस्तुत प्रसङ्ग में गुणकर्मान्यत्ववैशिष्ट्य और सत्तात्व होगा। ऐसे साध्याभावत्व से विशिष्ट गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता ही होगी केवल सत्ता अर्थात् शुद्ध सत्ता गुणकर्मान्यत्ववैशिष्ट्य सत्तात्व रूप साध्याभावत्व से विशिष्ट नहीं होगी। फलतः गुणकर्मान्यत्ववैशिष्ट्य सत्तात्व रूप साध्याभावत्व से विशिष्ट गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता से निरूपित निरवच्छिन्न अधिकरणता द्रव्य में ही होगी। द्रव्य में रहने वाली इस अधिकरणता से निरूपित वृत्तिता द्रव्यत्व में होगी तथा इस वृत्तिता का अभाव सद्धेतु—गुणत्व में होने के कारण व्याप्ति के लक्षण का समन्वय हो जाने से अव्याप्ति दोष सर्वथा निरस्त हो जाता है।

माथुरी

न चैवं कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वाद् इत्यादौ निरवच्छिन्न–साध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति वाच्यम्, केवलान्वयिनि अभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैवास्य दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात्।

साध्याभाव का निरवच्छिन्न अधिकरण ग्राह्य है ऐसा स्वीकार करने के अनन्तर भी कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में निरवच्छिन्न साध्याभाव की अधिकरणता के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति होगी यह नहीं कहा जा सकता है। क्यों कि ''केवलान्वयिनि अभावात्'' इस पङ्क्ति से ग्रन्थकार आचार्य गङ्गेशोपाध्याय ने आगे स्वयं इस दोष को प्रथम लक्षण में स्वीकार किया है।

अयं (गुण:) संयोगाभाववान् सत्त्वात् अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म इनमें से किसी को या सभी को पक्ष बना कर कपिसंयोगाभाव को स्वरूप सम्बन्ध से सत्त्व हेतु से यदि सिद्ध किया जाय तो यह हेतु सद्धेतु माना जायेगा। जहाँ–जहाँ सत्त्व या सत्ता समवाय सम्बन्ध से द्रव्य गुण एवं कर्म में रहती है वहाँ–वहाँ सभी जगह कपिसंयोग का अभाव भी स्वरूप सम्बन्ध से रहता ही है अत: यह सद्धेतुक स्थल है यह स्पष्ट हो जाता है। सत्ता के अधिकरण गुण एवं कर्म में कपिसंयोग का अभाव रहता है यह निर्विवाद है, परन्तु द्रव्य अर्थात् वृक्ष आदि में शाखा में कपिसंयोग होता है तथा मूल में कपिसंयोग नहीं होता है ऐसी स्थिति में वृक्ष को कपिसंयोग का अधिकरण माना जायेगा या कपिसंयोगाभाव का यह शङ्का अवश्य हो सकती है। इसका समाधान वृक्ष कपिसंयोग वाला भी है और कपिसंयोगाभाव वाला भी है, यह कह कर किया जा सकता है। इस प्रकार वृक्ष में कपिसंयोगाभाव नहीं है अथवा वृक्ष में

कपिसंयोग नहीं है यह नहीं कहा जा सकता। अन्तत: निष्कर्ष यह निकलता है कि गुण एवं कर्म में तो कपिसंयोगाभाव है ही द्रव्य में भी कपिसंयोगाभाव कपिसंयोग के अव्याप्यवृत्ति होने के कारण निराबाध है। दो द्रव्यों के बीच में ही संयोग होता है, इस नियम के अनुसार द्रव्य को छोड़ कर संसार के सभी पदार्थ में संयोग का अभाव अनुभव सिद्ध है तथा द्रव्य में भी जहाँ संयोग माना जाता है वहाँ भी संयोगाभाव है ही। इस प्रकार संयोगाभाव संसार में हर जगह है अर्थात् केवल संयोगाभाव का अन्वय ही हर स्थान पर है यह सिद्ध होता है, इसीलिये संयोगाभाव को न्यायदर्शन की भाषा में केवलान्वयी माना जाता है।

इतनी चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि, अयं, कपिसंयोगाभाववान्, सत्त्वात्, यह जैसे सद्धेतु वाला स्थल है वैसे ही यह केवलान्वयी साध्य वाला स्थल भी है। इस स्थल में साध्य कपिसंयोगाभाव है, साध्य का अभाव कपिसंयोग के अभाव का अभाव अर्थात् कपिसंयोग है, तथा इस कपिसंयोग रूप साध्याभाव का निरवच्छिन्न अधिकरण अप्रसिद्ध होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय सद्धेतु सत्ता में नहीं हो पाता है जिससे अव्याप्ति दोष होता है, जैसी कि ऊपर चर्चा की गयी है कि संयोग दो द्रव्यों में ही होता है तथा यह संयोग द्रव्य में रहता तो है पर सभी जगह व्याप्य हो कर नहीं रहता है सभी स्थान पर व्याप्य हो कर न रहना ही निरवच्छिन्न न होना होता है। इस प्रकार कपिसंयोग स्वरूप साध्याभाव के निरवच्छिन्न अधिकरण का न मिलना समझा जा सकता है, साथ ही यह भी भली भाँति समझ में आ जाता है कि इस स्थल का साध्य कैसे केवलान्वयी है, तथा केवलान्वयी साध्यक स्थल होने के कारण इसमें अव्याप्ति दोष का होना कैसे आचार्य गङ्गेशोपाध्याय को अभिमत ही है।

माथुरी

न च तथापि कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादौ निरवच्छिन्न– साध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्ति:, अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमवादिनये तस्य केवलान्वय्यनन्तर्गतत्वादिति

वाच्यम्; अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमवादिनये अन्योन्याभावान्तरात्यन्ताभावस्य प्रतियोगितावच्छदक–स्वरूपत्वे अपि अव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावाभावस्य व्याप्यवृत्तिस्वरूप–स्यातिरिक्तस्याभ्युपगमात्, तच्च अग्रे स्फुटीभविष्यति।

फिर भी कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात् इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में निरवच्छिन्न साध्याभाव की अधिकरणता के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति दोष होगा क्यों कि, अन्योन्याभाव को व्याप्यवृत्ति मानने के नियम वालों के सिद्धान्त में उसे '' कपिसंयोगी के भेद को'' केवलान्वयी के अन्तर्गत नहीं माना जाता है, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए, क्यों कि अन्योन्याभाव को व्याप्यवृत्ति मानने के नियम वालों के सिद्धान्त में अन्योन्याभाव के दूसरे अत्यन्ताभाव को प्रतियोगिता के अवच्छेदकस्वरूप मानने पर भी अव्याप्यवृत्ति वाले के अन्योन्याभाव के अभाव को व्याप्यवृत्ति स्वरूप एवं अतिरिक्त माना जाता है यह तथ्य आगे स्फुट होगा।

अयं कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्, इस स्थल के केवलान्वयी साध्य वाला स्थल होने के कारण, यहाँ पर अव्याप्ति दोष ग्रन्थकार श्रीगङ्गेश उपाध्याय को स्वयं स्वीकार्य है, अत: इस स्थल में अव्याप्ति दोष का उद्भावन समुचित नहीं है। फिर भी गुण:, कपिसंयोगिभिन्नं, गुणत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में साध्याभाव–कपिसंयोगिभेदाभाव, कपिसंयोगिभेद के प्रतियोगितावच्छेदक कपिसंयोग स्वरूप, का निरवच्छिन्न अधिकरण अप्रसिद्ध होने से आगे लक्षण समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष होगा ही।

धर्मिभेद एवं धर्म का अत्यन्ताभाव एक ही होता है, ऐसा नियम माना जाता है। इस नियम के अनुसार प्रस्तुत सन्दर्भ में कपिसंयोग रूप धर्म वाले

धर्मी अर्थात् कपिसंयोगी का भेद जो कपिसंयोगवान् वृक्ष आदि द्रव्य को छोड़ कर सब जगह रहेगा, तथा धर्म कपिसंयोग का अत्यन्ताभाव जो कपिसंयोगवान् वृक्ष आदि को छोड़ कर सर्वत्र रहेगा, समनियत–समान स्थान पर रहने वाले होने के कारण एक ही होते हैं।

फलस्वरूप कपिसंयोगाभाव को साध्य मानें या कपिसंयोगिभेद को साध्य मानें एक ही बात होती है, परन्तु कपिसंयोग के अभाव एवं कपिसंयोगी के भेद में यह विशेष अन्तर ध्यान देने योग्य है कि, कपिसंयोग का अत्यन्ताभाव संसार में हर जगह होने के साथ–साथ वृक्ष आदि द्रव्य में भी होता है, पर इसके विपरीत कपिसंयोगी का भेद गुण कर्म आदि सभी जगह तो होता है परन्तु वृक्ष आदि द्रव्य में कपिसंयोगी का भेद नहीं स्वीकार किया जाता है। इस अन्तर का प्रमुख कारण है कि अव्याप्यवृत्ति वस्तु का अत्यन्ताभाव तो अव्याप्यवृत्ती होता है परन्तु अव्याप्यवृत्ति वस्तु वाले का अन्योन्याभाव व्याप्यवृत्ती होता है। इस प्रकार कपिसंयोगी–अव्याप्यवृत्तिमत् का अन्योन्याभाव अर्थात् भेद व्याप्यवृत्ति होने के कारण कपिसंयोगाभाव की तरह द्रव्य में नहीं रहेगा। यही कारण है कि कपिसंयोगी का भेद केवलान्वयी भी नहीं माना जा सकता है, क्यों कि द्रव्य में कपिसंयोगी के भेद का अभाव–व्यतिरेक सुलभ होता है। इसका केवल अन्वय संसार में नहीं है। इस प्रकार इस सद्धेतु वाले स्थल में हुई अव्याप्ति की उपेक्षा यह कह कर नहीं की जा सकती है कि, 'यह केवलान्वयी साध्य वाला स्थल है और यहाँ अव्याप्ति ग्रन्थकार श्रीगङ्गेश की दृष्टि में स्वतः है।

यदि इस प्रकार कोई कपिसंयोगिभिन्नं, गुणत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्ति दोष का उद्भावन करता है तो यह उपयुक्त नहीं है क्यों कि, अन्योन्याभाव या भेद व्याप्यवृत्ती होता है, ऐसा मानने वालों के सिद्धान्त में सामान्य रूप से किसी वस्तु के अन्योन्याभाव के अभाव को अन्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदकस्वरूप मानने पर भी व्याप्यवृत्ति वाले के अन्योन्याभाव के अभाव को व्याप्यवृत्ति स्वरूप एवं अतिरिक्त अभाव स्वरूप ही माना जाता है, न कि अन्योन्याभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक स्वरूप माना जाता है।

इससे सम्बद्ध और तथ्य आगे स्पष्ट होंगे। ऐसी स्थिति में कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात् इस सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्यवृत्तिमत्—कपिसंयोगी के अन्योन्याभाव का अभाव, अन्योन्याभाव के प्रतियोगितावच्छेदक—कपिसंयोग रूप न होकर अतिरिक्त कपिसंयोगी के अन्योन्याभाव के अभाव रूप ही होगा तथा यह साध्याभाव, द्रव्य में व्याप्यवृत्ति अर्थात् निरवच्छिन्न वृत्तिमान् होगा। इस प्रकार इस स्थल में भी साध्याभाव की निरवच्छिन्नाधिकरणता द्रव्य में प्रसिद्ध होगी तथा इस अधिकरणता से निरूपित वृत्तिता द्रव्यत्व आदि में आयेगी तथा वृत्तिता का अभाव गुणत्व रूप सद्धेतु में होने से लक्षण समन्वय हो जाता है। फलस्वरूप अव्याप्ति दोष इस स्थल में भी नहीं हो पाता है।

माथुरी

ननु तथापि समवायादिना गगनादिहेतुके इदं वह्निमद्—गगनादित्यादावतिव्याप्तिः, वह्न्यभाववति हेतुतावच्छेदक—समवायादिसम्बन्धेन गगनादेरवृत्तेः, न च तल्लक्ष्यमेव हेतुता—वच्छेदकसम्बन्धेन पक्षधर्मत्वाभावाच्चासद्धेतुत्वव्यवहार इति वाच्यम्, तत्रापि व्याप्तिभ्रमेणैवानुमितेरनुभवसिद्धत्वात्; अन्यथा धूमवान् वह्नेरित्यादेरपि लक्ष्यत्वस्य सुवचत्वात्।

फिर भी समवाय सम्बन्ध से गगन आदि असद्धेतु वाले इदं वह्निमत् गगनात् इत्यादि स्थल में अतिव्याप्ति होगी, इस स्थल में साध्य—वह्नि है, साध्य का अभाव—वह्नि का अभाव है, इसके अधिकरण जलह्रद आदि में हेतुता के अवच्छेदक समवाय सम्बन्ध से गगन के अवृत्ति होने से लक्षण समन्वय हो जाने के कारण अतिव्याप्ति दोष सुस्पष्ट है। इस स्थल में गगन हेतु लक्ष्य ही है, हेतुता के अवच्छेदक सम्बन्ध से हेतु—गगन में पक्षधर्मता का अभाव होने से असद्धेतुत्व का व्यवहार होता है, ऐसा नहीं

कहना चाहिये, वहाँ भी व्याप्ति के भ्रम से अनुमिति अनुभव सिद्ध है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो धूमवान्, वह्नेः, इत्यादि असद्धेतु वाले स्थल के वह्नि आदि हेतु को भी लक्ष्य सहजता से कहा जा सकेगा।

इदं वह्निमत् गगनात् यह स्थल असद्धेतु वाला स्थल है। यहाँ इदं पद का अर्थ—पर्वत आदि स्थान, पक्ष है। वह्नि संयोग सम्बन्ध से साध्य है, गगन समवाय सम्बन्ध से हेतु है। समवाय सम्बन्ध से कोई भी द्रव्य अपने अवयवों में ही रहता है। अवयव में अवयवी समवाय सम्बन्ध से रहता है यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। फलत: जो द्रव्य निरवयव है अर्थात् नित्य है, ऐसे द्रव्यों का कोई अवयव न होने के कारण ये कहीं भी समवाय सम्बन्ध से नहीं रहते हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में, इदं, वह्निमद्, गगनात्, इस स्थल में गगन हेतु भी ऐसा ही द्रव्य है अत: यह समवाय सम्बन्ध से कहीं भी नहीं रहता है। इस प्रकार समवाय सम्बन्ध से जहाँ—जहाँ गगन होता है वहाँ—वहाँ साध्य—वह्नि होता है यह व्याप्ति नहीं बन सकती है। यही कारण है कि गगन असद्धेतु है यह व्यवहार उपपन्न होता है।

इस प्रकार साध्य—वह्नि के संयोग सम्बन्ध से अभाव के अधिकरण तालाब, नदी, कूप आदि से निरूपित समवाय सम्बन्ध से वृत्तिता तडागत्व, नदीत्व, कूपत्व आदि में आती है तथा गगन के समवाय सम्बन्ध से कहीं भी वृत्ति न होने के कारण वृत्तिता का अभाव इस गगन हेतु में अक्षुण्ण होने से गगन इस असद्धेतु में अतिव्याप्ति सुस्थिर होती है। यहाँ यदि कोई गगन को लक्ष्य मानते हुए इस अतिव्याप्ति का परिहार करना चाहता है तथा गगन में असद्धेतुता के व्यवहार को गगन में पक्षधर्मता न होने के कारण सार्थक सिद्ध करना चाहता है तो यह प्रयास समुचित नहीं है। यदि इदं, वह्निमत्, गगनात्; इस स्थल में अनुमिति होती भी है तो वह व्याप्ति के भ्रम से ही सम्भव है। इस प्रामाणिक अनुभव के आधार पर गगन वह्नि का व्याप्य है, यह नहीं माना जा सकता है। फलत: गगन व्याप्ति के लक्षण का लक्ष्य किसी भी प्रकार नहीं

हो सकता है। यदि इस अनुभव का अपलाप करते हुए गगन को वह्नि का व्याप्य सिद्ध करने का आग्रह करेंगे तो पर्वतः, धूमवान्, वह्नेः; इस असद्धेतु वाले स्थल के वह्नि हेतु में साध्याभाव–धूमाभाव के अधिकरण जलह्रद से निरूपित वृत्तित्वाभाव एवं धूमाभावाधिकरण अयोगोलक से निरूपित वृत्तित्व जलत्वोभयाभाव के वह्नि हेतु में होने के कारण वह्नि–हेतु को भी धूम की व्याप्ति के लक्षण का लक्ष्य मानते हुए वह्नि में भी धूम की व्याप्यता मानी जा सकती है। परिणाम स्वरूप इस आपत्ति का निरास करने के लिए जो व्याप्ति के लक्षण में वृत्तित्वसामान्याभाव का निवेश कर परिष्कार किया गया है वह अनावश्यक सिद्ध हाने लगेगा। जैसे यहाँ व्याप्ति के लक्षण का, वृत्तित्व सामान्याभाव का निवेश लक्षण में स्वीकार कर परिष्कार किया जाता है तथा वह्नि को व्याप्ति के लक्षण का लक्ष्य नहीं माना जाता है। वैसे ही इदं वह्निमत् गगनात्, इस स्थल के गगन हेतु को भी वह्नि की व्याप्ति के लक्षण का लक्ष्य मानना उचित नहीं है तथा गगन हेतु को अलक्ष्य मानते हुए यहाँ हुई अतिव्याप्ति के वारण का प्रयास ही समुचित होगा।

माथुरी

एवं द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः, विशिष्टसत्त्वस्य केवलसत्त्वानतिरेकितया द्रव्यत्वाभाववत्यपि गुणादौ तस्य वृत्तेः, गुणे गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति प्रतीतेः सर्वसिद्धत्वात्।

इस प्रकार व्याप्ति के इस परिष्कृत प्रथम लक्षण की द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात् इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल के सद्धेतु में अव्याप्ति होगी। गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्व एवं केवल सत्त्व अर्थात् शुद्ध सत्त्व के एक होने से द्रव्यत्वाभाव वाले भी गुण आदि में, इस सत्त्व रूप हेतु के वृत्ति होने से यह अव्याप्ति होती है। गुण में गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता है इस प्रकार की प्रतीति

सभी लोगों को मान्य है अतः गुण निरूपित वृत्तिता गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्व रूप हेतु में निराबाध है।

व्याप्ति के प्रथम लक्षण की जैसे इदं, वह्निमत्, गगनात्, इस असद्धेतु वाले स्थल के असद्धेतु गगन में अतिव्याप्ति होती है वैसे ही इदं, द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात् इस सद्धेतु वाले स्थल के गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्व रूप सद्धेतु में अव्याप्ति भी होती है। यह स्थल सद्धेतु वाला है क्यों कि जहाँ—जहाँ गुणकर्मान्यत्व अर्थात् गुणकर्मभेद, विशिष्ट सत्त्व होता है वहाँ—वहाँ सभी जगह द्रव्य में सत्ता रूप हेतु भी होता है। सत्ता नाम की सबसे बड़ी जाति द्रव्य, गुण एवं कर्म में समवाय सम्बन्ध से रहती है। गुणकर्मान्यत्व अर्थात् गुणान्यत्व एवं कर्मान्यत्व, दूसरे शब्दों में गुणभेद एवं कर्मभेद, द्रव्य में रहता है इस प्रकार गुणकर्मभेद और सत्ता दोनों जहाँ रहेंगे, वही गुणकर्मभेद विशिष्ट सत्ता वाला होगा। गुणभेद, कर्मभेद एवं सत्ता एक साथ द्रव्य में ही रहते हैं अतः गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता जहाँ—जहाँ द्रव्य में है वहाँ—वहाँ साध्य द्रव्यत्व है, यह साहचर्य नियम रूप व्याप्ति हेतु में सहज रूप में सिद्ध हो जाती है। विशिष्ट शुद्ध से अतिरिक्त नहीं होता है (विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते) इस नियम के अनुसार गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता, शुद्ध सत्ता स्वरूप ही है। विशिष्ट सत्ता एवं शुद्ध सत्ता के एक होने से साध्य—द्रव्यत्व के अभाव के अधिकरण गुण एवं कर्म में सत्ता स्वरूप, विशिष्ट सत्ता के होने से साध्या—भावाधिकरण निरूपित वृत्तिता ही सद्धेतु गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता में मिलती है। वृत्तिता का अभाव सद्धेतु—गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता में न होने से अव्याप्ति दोष प्रसक्त होता है।

गुणे गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता यह प्रतीति प्रामाणिक मानी जाती है, परन्तु गुणः, गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट— सत्तावान् यह प्रतीति प्रामाणिक रूप में विद्वानों द्वारा नहीं स्वीकार की जाती है। इस लिये इस प्रतीति के आधार पर भी साध्याभाव—द्रव्यत्वाभाव के अधिकरण गुण आदि से निरूपित वृत्तिता गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता रूप हेतु में करतलामलकवत् स्पष्ट हो जाती है।

यहाँ यह सूक्ष्मता से अवश्य समझ लेना चाहिए कि गुणः, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् यह प्रतीति प्रामाणिक नहीं मानी जाती है तथा गुणे गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता यह प्रतीति प्रामाणिक होती है इसमें क्या युक्ति है?

जब भूतल पर घट होता है तथा भूतल पर पट भी होता है तो भूतल में घटवान् यह प्रतीति होती है परन्तु पट में घटवान् यह प्रतीति नहीं होती है, परन्तु पट में घट है यह प्रतीति होती है क्यों कि पटे घटः अथवा पट में घट है इस प्रतीति के लिये पट से घट का मात्र सम्बद्ध होना अपेक्षित होता है, तथा पट से घट का स्वाश्रय वृत्तित्व रूप सम्बन्ध यहाँ पर है ही। पर जैसे भूतलं घटवत् यह प्रतीति होती है वैसे ही पटः घटवान् यह प्रतीति नहीं होती है, क्यों कि पट में घट सीधे आश्रित नहीं है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि भूतलं घटवत् यह प्रतीति साक्षात् सम्बन्ध से आधाराधेय—भाव होने पर उपपन्न होती है, पर पटे घटः, यह प्रतीति पट में घट का संस्पर्श मात्र होने से हो जाती है।

ठीक इसी प्रकार भूतल की तरह द्रव्य है तथा द्रव्य में गुण, भूतल पर विद्यमान पट की तरह है तथा भूतल में रहने वाले घट की तरह गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता है। गुणभेद, कर्मभेद एवं सत्ता अर्थात् गुणकर्मभेदविशिष्ट सत्ता साक्षात् सम्बन्ध से द्रव्य में रहती है अतः द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावत् यह प्रतीति होती है किन्तु द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहने वाले गुण में; गुणः, गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्तावान् यह प्रतीति नहीं होती है, परन्तु द्रव्य में रहने वाले गुण में गुणकर्मभेदविशिष्ट सत्ता स्वाश्रयवृत्तित्व सम्बन्ध से सम्बद्ध अवश्य है, फलतः गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता का गुण के साथ संस्पर्श होने के कारण गुणे गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता अर्थात् गुण में गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता है यह प्रामाणिक प्रतीति होती है। इस प्रकार प्रामाणिकों का व्यवहार ही उपर्युक्त प्रतीति में सबसे महत्त्वपूर्ण युक्ति है यह तथ्य समझ में आ जाता है।

माथुरी

सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिश्च सत्ताभाववति सामान्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति चेत्, न, हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणताप्रतियोगिकहेतुता–वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितनिरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिर–वच्छिन्नाधिकरणताश्रयवृत्तित्वसामान्याभावस्य विवक्षितत्वात्; वृत्तित्वञ्च न हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन विवक्षणीयम्। अस्ति च सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादौ सत्ताभावाधिकरणताश्रयवृत्तित्वस्य हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपित–विशेषणताविशेषसम्बन्धेन सामान्याभावो द्रव्यत्वादौ, समावाय–सम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपित–विशेषणताविशेषसम्बन्धा–वच्छिन्नप्रतियोगिताक–सत्ताभावाधिकरणत्वाश्रयवृत्तित्वाभावस्य व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्न–प्रतियोगिताकाभावतया संयोग–सम्बन्धावच्छिन्नगुणाभावादेरिव केवलान्वयित्वात्।

इसी प्रकार अयं, सत्तावान्, द्रव्यत्वात् इस सद्धेतु वाले स्थल में भी अव्याप्ति दोष होगा क्योंकि सत्ताभाव वाले सामान्यादि में हेतुता के अवच्छेदक समवाय सम्बन्ध से वृत्ति पदार्थ अप्रसिद्ध होता है ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, क्यों कि हेतुता के अवच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हेत्वधिकरणताप्रतियोगिक अर्थात् हेत्वधिकरणता निरूपित हेतुता के अवच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधेयता निरूपित अर्थात् आधेयता प्रतियोगिक विशेषणता विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से पूर्व परिष्कृत साध्याभावत्वविशिष्ट से निरूपित

पूर्वपरिष्कृत सम्बन्ध–संसर्ग से निरूपित निरवच्छिन्नाधिकरणता के आश्रय से निरूपित वृत्तित्वसामान्याभाव ही व्याप्ति के लक्षण के रूप में विवक्षित है। यहाँ पर वृत्तिता (साध्याभाधिकरण निरूपिता वृत्तिता) हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से विवक्षित नहीं है।

अयं सत्तावान् द्रव्यत्वात् इस स्थल में द्रव्यत्व हेतु में सत्ताभाव की अधिकरणता के आश्रय से निरूपित वृत्तिता का हेतुतावच्छेदक समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधेयता निरूपित अर्थात् आधेयता प्रतियोगिक विशेषणता विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से सामान्याभाव बिना किसी बाधा के है, क्यों कि समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधेयता निरूपित अर्थात् आधेयता प्रतियोगिक विशेषणता विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक सत्ताभावाधिकरणताश्रयवृत्तित्व का अभाव व्यधिरण सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक अभाव होने से संयोग सम्बन्ध से अवच्छिन्न गुण के अभाव की तरह केवलान्वयी होता है।

जैसे इदं, वह्निमत्, गगनात्; यहाँ पर अतिव्याप्ति एवं इदं, द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्; यहाँ पर अव्याप्ति होती है वैसे ही अयं, सत्तावान्, द्रव्यत्वात्; इस सद्धेतु वाले स्थल में भी अव्याप्ति दोष होता है। इस स्थल में घट आदि द्रव्य पक्ष है। सत्ता समवाय सम्बन्ध से साध्य है तथा द्रव्यत्व समवाय सम्बन्ध से हेतु है। जहाँ–जहाँ घट पृथ्वी जल तेज आदि में, द्रव्यत्व समवाय सम्बन्ध से रहता है, वहाँ–वहाँ सत्ता नामक जाति भी समवाय सम्बन्ध से नियमित रहती ही है। फलतः द्रव्यत्व यहाँ सद्धेतु है यह सुस्पष्ट है। साध्य–सत्ता के अभाव के अधिकरण द्रव्य गुण एवं कर्म को छोड़ कर सामान्य आदि में हेतुता के अवच्छेदक समवाय सम्बन्ध से किसी के भी वृत्ति

न होने से हेतुतावच्छेदक समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न वृत्तिता के अभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय सत्ता में न होने से अव्याप्ति दोष होता है। इस अव्याप्ति का वारण करने के लिये साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तिता में हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नत्व का निवेश नहीं करना है यह निर्णय लिया जाता है। इस निर्णय के साथ ही यह भी निर्धारित किया जाता है कि साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तिता का अभाव अर्थात् पूर्व परिष्कृत साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न साध्याभावत्व विशिष्ट निरूपित, पूर्व परिष्कृत सम्बन्ध–साध्यतावच्छेदक–सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगित्व, तदवच्छेदकत्व एतदन्यतरावच्छेदकसम्बन्ध में रहने वाली संसर्गता से निरूपित निरवच्छिन्न अधिकरणताश्रयनिरूपित वृत्तिता का हेतुतावच्छेदक धर्म से विशिष्ट हेतु की अधिकरणता से निरूपित जो हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधेयता ऐसी आधेयता प्रतियोगिक विशेषणता विशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से सामान्याभाव विवक्षित है।

सत्तावान्, द्रव्यत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में सत्ताभावाधिकरणताश्रय सामान्य आदि से निरूपित वृत्तित्व का हेतुतावच्छेदक समवायसम्बन्धावच्छिन्न आधेता प्रतियोगिक स्वरूप सम्बन्ध से सामान्याभाव केवलान्वयी होने से संसार में सब जगह रहेगा। फलत: द्रव्यत्व इस सद्धेतु में भी इस वृत्तित्व सामान्याभाव के होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय हो जाता है, जिससे अव्याप्ति दोष का सहज ही निवारण हो जाता है। साध्याभाव–सत्ताभाव की अधिकरणता द्रव्य,गुण,कर्म को छोड़ कर सामान्य आदि पदार्थों में होती है। इस अधिकरणता के आश्रय सामान्य आदि से निरूपित सामान्यत्व आदि में जो वृत्तिता होती है वह स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता होती है, क्यों कि सामान्य आदि में सामान्यत्व या कोई भी पदार्थ समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता है, स्वरूप आदि सम्बन्ध से ही रहता है। फलत: सत्ताभावाधिकरणताश्रय निरूपित हेतुतावच्छेदक समवायसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता नहीं हो सकती है। यह वृत्तिता हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से भिन्न स्वरूप आदि सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता है अत: प्रस्तुत स्थल

में सत्ताभावाधिकरणताश्रय निरूपित वृत्तिता, साध्याभावाधिकरणताश्रयनिरूपित स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता प्रतियोगिक स्वरूपसम्बन्ध से सामान्यत्व आदि में रहेगी लेकिन हेतुतावच्छेदक समवायसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता या आधेयता प्रतियोगिक स्वरूपसम्बन्ध से यह सत्ताभावधिकरणताश्रयनिरूपितवृत्तिता कहीं भी नहीं रहेगी, अर्थात् इस सम्बन्ध से सत्ताभावाधिकरणताश्रयनिरूपित वृत्तिता का अभाव सब जगह प्रसिद्ध होने से द्रव्यत्व इस सद्धेतु में भी प्रसिद्ध हो ही जाता है।

जिस सम्बन्ध से कोई वस्तु कभी भी कहीं भी नहीं रहती है, वह सम्बन्ध उस वस्तु का व्यधिकरण सम्बन्ध होता है और ऐसे व्यधिकरण सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक अभाव केवलान्वयी माना जाता है। इसी प्रकार जिस धर्म से कोई वस्तु कभी भी कहीं भी नहीं रहता है वह धर्म प्रतियोगिव्यधिकरण कहा जाता है, और ऐसे धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक अभाव भी केवलान्वयी माना जाता है, अर्थात् ऐसा अभाव भी सब जगह रहता है यह प्रामाणिकों का अभिमत है।

उदाहरण के लिए गुण समवाय सम्बन्ध से द्रव्य में रहता है यह हम सभी जानते हैं तथा गुण संयोग सम्बन्ध से कहीं नहीं रहता है यह भी हम जानते है। ऐसी स्थिति में यदि हम गुण का अभाव संयोग सम्बन्ध से लेते हैं तो यह सम्बन्ध गुण का व्यधिकरण सम्बन्ध होगा और इस सम्बन्ध से अवच्छिन्न गुण में रहने वाली प्रतियोगिता का निरूपक अभाव संसार में सब जगह होने से केवलान्वयी कहा जएगा, क्यों कि इस अभाव का संसार में सर्वत्र अन्वय अर्थात् सत्ता है व्यतिरेक अर्थात् अभाव नहीं है। इसी प्रकार यदि गुण का द्रव्यत्व रूप से अभाव लें तो यह अभाव संसार में सब जगह रहेगा क्यों कि गुण द्रव्यत्व रूप से संसार में कहीं भी नहीं रहता है, गुण यदि कहीं रहता है तो वह गुणत्व रूप से रहता है, इस प्रकार गुण का द्रव्यत्व व्यधिकरण धर्म होता है तथा व्यधिकरण धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक अभाव भी केवलान्वयी होता है, यह प्रसङ्गतः यहाँ समझ लेना सर्वथा उपयुक्त होगा।

माथुरी

द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ च द्रव्यत्वाभावाधिकरणगुणादि–वृत्तित्वस्यैव समावायसम्बन्धावच्छिन्नाधेतानिरूपितविशेषणता–विशेषसम्बन्धेन सत्तायां सत्त्वान्नातिव्याप्तिः, द्रव्यं विशिष्ट–सत्त्वादित्यादावव्याप्तिवारणाय प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणम्।

इदं द्रव्यं सत्त्वात्, इस असद्धेतु वाले स्थल में द्रव्यत्वाभाव के अधिकरण गुण आदि से निरूपित वृत्तित्व के ही समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधेयता निरूपित अर्थात् आधेयताप्रतियोगिक विशेषणताविशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से सत्ता में होने के कारण अतिव्याप्ति दोष नहीं है, द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादि सद्धेतु वाले स्थल में अव्याप्ति दोष का वारण करने के लिये प्रतियोगिक यहाँ तक का भाग (हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेत्वधिकरणता प्रतियोगिक इतना भाग) आधेयता में विशेषण दिया गया है।

अभी सत्तावान्, द्रव्यत्वात् इस स्थल में अव्याप्ति का वारण किया गया है। इस स्थल में द्रव्य पक्ष था, सत्ता साध्य था तथा द्रव्यत्व हेतु था। इसके विपरीत यदि घट आदि द्रव्य को पक्ष बना कर द्रव्यत्व को सिद्ध किया जाय तथा हेतु सत्ता को बनाया जाय तो यह असद्धेतु वाला स्थल होता है, क्यों कि समवाय सम्बन्ध से जहाँ–जहाँ द्रव्य गुण कर्म में सत्ता होती है वहाँ–वहाँ अर्थात् गुण एवं कर्म में साध्य–द्रव्यत्व नहीं होता है। इस असद्धेतु वाले स्थल में लक्षण समन्वय न होने से परिष्कृत व्याप्ति लक्षण में अतिव्याप्ति दोष नहीं है यह भी स्पष्ट हो जाता है। इस असद्धेतु वाले स्थल में साध्य–द्रव्यत्व के अभाव के अधिकरण गुण आदि से निरूपित वृत्तित्व के ही हेतुतावच्छेदक–धर्मावच्छिन्न अर्थात् हेतुतावच्छेदक धर्म से विशिष्ट हेतु सत्ताधिकरण गुणादिनिरूपित (प्रतियोगिक) हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्न आधेयता निरूपित अर्थात् आधेयता प्रतियोगिक विशेषणता विशेष (स्वरूप) सम्बन्ध से सत्ता हेतु में होने

के कारण वृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने से अतिव्याप्ति दोष नहीं है यह सुस्पष्ट होता है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तिता का अभाव हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न आधेयता निरूपित अर्थात् आधेयता प्रतियोगिक स्वरूप सम्बन्ध से ही क्यों नहीं कहते हैं? इस सम्बन्ध के भीतर आने वाली आधेयता में हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेत्वधिकरणताप्रतियोगिकत्व अर्थात् अधिकरणता निरूपितत्व यह विशेषण क्यों देते हैं ? इसका समाधान करते हुए मथुरानाथ तर्कवागीश ने कहा है कि यदि आधेयता में उपर्युक्त विशेषण नहीं देंगे तो इदं, द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात् इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में सद्धेतु गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता में लक्षण का समन्वय न होने से अव्याप्ति होती है। इस सद्धेतु वाले स्थल में साध्य द्रव्यत्व के अभाव के अधिकरण गुण आदि से निरूपित वृत्तिता (गुणे गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता इस प्रतीति के अधार पर) मात्र हेतुतावच्छेदकसमवाय सम्बन्धावच्छिन्न आधेयताप्रतियोगिक स्वरूप सम्बन्ध से गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता रूप सद्धेतु में भी होती है। फलतः वृत्तित्वाभाव स्वरूप व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने से अव्याप्ति प्रसक्त होती है।

जब हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से अवच्छिन्न आधेयता में हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेत्वधिकरणताप्रतियोगिकत्व अर्थात् निरूपितत्व का निवेश कर देते हैं तब साध्याभावाधिकरण गुण निरूपित गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता में रहने वाली वृत्तिता हेतुतावच्छेदक गुणकर्मान्यत्ववैशिष्ट्य सत्तात्व से विशिष्ट गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता गुण में अप्रसिद्ध होने से इस अधिकरणता से निरूपित (प्रतियोगिक) आधेयता, गुण निरूपित आधेयता नहीं होगी; फलतः साध्याभाव–द्रव्यत्वाभावाधिकरण गुण निरूपित वृत्तिता का हेतुतावच्छेदक धर्म गुणकर्मान्यत्ववैशिष्ट्य सत्तात्व से विशिष्ट गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता–हेतु की अधिकरणता से निरूपित हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न आधेयता प्रतियोगिक स्वरूप सम्बन्ध व्यधिकरण सम्बन्ध होगा तथा इस सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक अभाव केवलान्वयी होने से सद्धेतु–गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता में भी रहेगा। इस प्रकार लक्षण समन्वय होने से अव्याप्ति नहीं होती है।

जैसे साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति के प्रथम लक्षण का 'पर्वतः, वह्निमान् धूमात् इस सद्धेतु वाले स्थल में लक्षण समन्वय होने से अव्याप्ति नहीं होती है तथा इसके विपरीत अर्थात् इस सद्धेतु वाले स्थल में जो साध्य था उसे हेतु बना कर और जो हेतु था उसे साध्य बना कर 'पर्वतः, धूमवान्, वह्नेः, इस असद्धेतु वाले स्थल में लक्षण समन्वय न होने से अतिव्याप्ति नहीं होती है, यह आरम्भ में समझाते हैं। ठीक इसी प्रकार अब तक परिष्कृत व्याप्ति के प्रथम लक्षण का अयं, सत्तावान्, द्रव्यत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में लक्षण समन्वय होता है, तथा इसके विपरीत अर्थात् इस स्थल में जो साध्य है उसको हेतु बना कर तथा जो हेतु है उसको साध्य बना कर, इदं, द्रव्यं, सत्त्वात्, इस असद्धेतु वाले स्थल में असद्धेतु सत्ता में व्याप्ति के लक्षण का समन्वय न होने से अतिव्याप्ति दोष नहीं है यह उपर्युक्त पङ्क्तियों में स्पष्ट किया गया है, ऐसा उपर्युक्त सन्दर्भ की सूक्ष्म समालोचना से ज्ञात होता है।

माथुरी

वस्तुतस्तु एतल्लक्षणकर्तृमते विशिष्टसत्त्वं विशिष्ट–निरूपितआधारतासम्बन्धेनैव द्रव्यत्वव्याप्यं न तु समवायादि–सम्बन्धेन तथा च प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणमनुपादेयमेव, तदुपादाने हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्यकारणभावभेदापत्तेः। हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सति इत्यनेनापि विशेषणाद्वह्निमान् गगनादित्यादौ नातिव्याप्तिः।

वास्तव में तो इस लक्षण को बनाने वाले के मत में विशिष्ट सत्ता अर्थात् गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता विशिष्ट निरूपित आधारता सम्बन्ध से ही द्रव्यत्व की व्याप्य होती है, समवाय सम्बन्ध से नहीं। ऐसी स्थिति में प्रतियोगिक पर्यन्त भाग आधेयता में विशेषण के रूप में अनुपादेय ही है। प्रतियोगिक पर्यन्त भाग

यदि आधेयता में विशेषण के रूप में दिया जाता है तो हेतुतावच्छेदक धर्म के भेद से कार्यकारणभाव में भेद की आपत्ति होगी। हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व यह विशेषण भी हेतु में देने से पूर्वदर्शित इदं, वह्निमद्, गगनात् इस स्थल के गगन हेतु में हुई अतिव्याप्ति का भी वारण हो जाता है।

सिद्धान्त रूप में इस लक्षण को परिष्कृत करने वाले के मत में, इदं, द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में विशिष्टसत्ता समवाय सम्बन्ध से हेतु नहीं है, अपितु विशिष्ट निरूपित आधारता सम्बन्ध से हेतु है, यह मान लेने से साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तिता का अभाव केवल हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न आधेयता प्रतियोगिक स्वरूपसम्बन्ध से लेने से भी कोई दोष नहीं होता है। द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्त्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में साध्याभावाधिकरण गुण से निरूपित वृत्तिता का हेतुतावच्छेदक गुणकर्मान्यत्ववैशिष्ट्य सत्तात्व विशिष्ट निरूपित आधारता स्वरूप हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न आधेयता प्रतियोगिक स्वरूप सम्बन्ध व्यधिकरण सम्बन्ध होता हैं अतः इस सम्बन्ध से साध्याभावाधिकरण गुणरूपित वृत्तिता का अभाव गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता में होने से अव्याप्ति का वारण सहज रूप में हो जाता है। आधेयता में हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेत्वधिकरणता प्रतियोगिकत्व का निवेश करने से हेतुतावच्छेदक के अलग–अलग होने से कार्यकारणभाव में भी भेद की आपत्ति होती है। ऐसा निवेश आधेयता में न करने से इस कार्यकारणभाव के भेद की आपत्ति भी अनायास ही निरस्त हो जाती है।

व्याप्ति के इस लक्षण की इदं, वह्निमद्, गगनात् इस असद्धेतु वाले स्थल में पूर्वदर्शित रीति से जो अतिव्याप्ति होती है उस अतिव्याप्ति का निराकरण करने के लिए व्याप्ति के लक्षण में हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व यह एक अलग से विशेषण भी दे दिया जाता है। यह विशेषण देने के बाद हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से सम्बन्धित्व विशिष्ट साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव यह व्याप्ति का लक्षण निष्पन्न होता है। यह लक्षण इदं,

वह्निमद्, गगनात्, इस असद्धेतु वाले स्थल में असद्धेतु गगन में समन्वित नहीं होता है यद्यपि गगन में साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव होता है लेकिन हेतुतावच्छेदक समवाय सम्बन्ध से सम्बन्धित्व गगन में नहीं होता है फलत: हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व विशिष्ट वृत्तित्वाभाव का अभाव गगन में होने से व्याप्ति के लक्षण का समन्वय नहीं होता है इस प्रकार अतिव्याप्ति दोष का वारण हो जाता है।

माथुरी

ननु तथापि उभयत्वमुभयत्रैव पर्याप्तं न तु एकत्रेति सिद्धान्तादरे घटत्ववान्, घटत्वतदभाववदुभयत्वादित्यादौ पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतुत्वेऽतिव्याप्तिः, घटत्वाभाववति हेतुतावच्छेदकपर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतोरवृत्तेः। घटो न घटपटोभयमितिवत्, घटत्वाभाववान् न घटत्वतदभाव–वदुभयमित्यपि प्रतीतेरिति चेत्, न तादृशसिद्धान्तादरे हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यसमानाधिकरणत्वे सतीत्यनेनैव विशेषणीयत्वादिति। अत एव निविशतां वा वृत्तिमत्त्वं साध्य–समानाधिकरणत्वं वेति केवलान्वयिग्रन्थे दीधितिकृतः।

हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व का व्याप्ति के लक्षण में निवेश करने के बाद भी ''उभयत्व उभय में ही पर्याप्त अर्थात् पर्याप्ति सम्बन्ध से रहता है एक जगह नहीं'', इस सिद्धान्त का समादर करने पर घटत्ववान्, घटत्वतदभाववत् उभयत्वात्, इत्यादि असद्धेतु वाले स्थल में पर्याप्ति नामक सम्बन्ध से घटत्वतदभाववदुभयत्व को हेतु करने पर अतिव्याप्ति दोष होता है क्यों कि घटत्वाभाव के अधिकरण (घटत्वाभाववत्) में हेतुतावच्छेदक पर्याप्ति नामक सम्बन्ध से हेतु अवृत्ति होता है,

उभयत्व उभय में ही पर्याप्ति सम्बन्ध से रहता है एक में नहीं यह सिद्धान्त; 'घट', घट–पट उभय नहीं है इस प्रामाणिक प्रतीति की तरह, घटत्वाभाववान्, घटत्वतदभाववत् उभय नहीं है, इस प्रामाणिक प्रतीति के आधार पर सिद्ध होता है। इस प्रकार की आशङ्का नहीं करनी चाहिए क्यों कि ऐसे सिद्धान्त का समादर करने पर, हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से साध्यसमानाधिकरणत्वे सति, यही विशेषण व्याप्ति के लक्षण में देते हैं। इसी लिए वृत्तिमत्त्व का निवेश करें अथवा साध्यसमानाधिकरणत्व का (व्याप्ति–लक्षण में) निवेश करें इस प्रकार केवलान्वयि ग्रन्थ में दीधितिकार ने कहा है।

'हेतुतावच्छेदक सम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सति साध्याभावाधिकरणनिरूपित–वृत्तित्वाभाव' अर्थात् हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से सम्बन्धित्वविशिष्ट साध्या–भावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव इस प्रकार व्याप्ति के लक्षण का परिष्कार करते हैं। इस लक्षण के अनुसार वही सद्धेतु माना जायेगा जिस हेतु में साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव हो तथा हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व हो। उदाहरण के लिये, पर्वतः, वह्निमान्, धूमात्; इस सद्धेतु वाले स्थल के सद्धेतु धूम में साध्य–वह्नि के अभाव के अधिकरण–जलह्रद से निरूपित वृत्तित्व का अभाव भी है तथा इसी धूम में, हेतुता के अवच्छेदक सम्बन्ध– संयोग सम्बन्ध से पर्वत, महानस आदि से निरूपित सम्बन्धित्व भी है। फलतः धूम रूप एक अधिकरण में साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव एवं हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व दोनों धर्म होने के कारण सामाना–धिकरण्य या एकाधिकरणवृत्तित्व सम्बन्ध से, हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व विशिष्ट साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव रूप व्याप्ति का लक्षण धूम सद्धेतु में निराबाध सिद्ध होता है।

परन्तु इस व्याप्ति के लक्षण की अयं, घटत्ववान्, घटत्वतदभाव–वदुभयत्वात्; इस असद्धेतु वाले स्थल में अतिव्याप्ति होती है। इस असद्धेतु वाले स्थल में घट पक्ष है। घट में घटत्व समवाय सम्बन्ध से साध्य है।

घटत्वतदभाववदुभयत्व पर्याप्ति सम्बन्ध से हेतु है। उभयत्व उभय में रहने वाला धर्म है। उभयत्व समवाय सम्बन्ध से प्रत्येक में भी रहता है उभयत्व एवं द्वित्व समानार्थक है। द्वित्व, संख्या रूप गुण है जो दो में रहता है और ये दो यदि द्रव्य है तो उन दो द्रव्यों में यह द्वित्व या उभयत्व गुण रूप होने के कारण समवाय सम्बन्ध से दोनों में भी रहेगा तथा प्रत्येक द्रव्य में भी रहेगा। ऐसा न्याय के विद्वानों का अभिमत है परन्तु यही उभयत्व या द्वित्व यदि पर्याप्ति सम्बन्ध से रहेगा तो एक में नहीं रहेगा दो में ही रहेगा ऐसा सिद्धान्त स्वीकार करने पर घटत्ववान्, घटत्वतदभाववदुभयत्वात्; इस असद्धेतुक स्थल में अतिव्याप्ति होती है। जहाँ–जहाँ पर्याप्ति सम्बन्ध से घटत्व–तदभाववदुभयत्व घटत्ववत्–घट एवं घटत्वाभाववत्–घट से भिन्न सभी पट आदि पदार्थों में है वहाँ–वहाँ घटत्व है यह नहीं कह सकते, क्यों कि उभय में घटत्व समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता है। फलत: यह स्थल असद्धेतु वाला स्थल है यह सिद्ध होता है। इस स्थल में साध्य–घटत्व है। साध्याभाव घटत्वाभाव है। उसका अधिकरण–घटत्वाभाववत् होता है। इस घटत्वाभाववत् में हेतुता के अवच्छेदक पर्याप्ति सम्बन्ध से घटत्वतदभाववदुभयत्व–हेतु, सम्बन्धी नहीं होता है। अत: घटत्व–तदभाववदुभयत्व इस हेतु में हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेत्वधिकरणता निरूपित हेतुतावच्छेदक–पर्याप्तिसम्बन्धावच्छिन्न आधेयता प्रतियोगिक स्वरूपसम्बन्ध से साध्याभावाधि–करण निरूपित वृत्तित्व का अभाव होने से अतिव्याप्ति होती है। घटत्वाभाववत् में घटत्ववत् (घट) घटत्वाभाववत् (पट आदि) उभयं यह प्रतीति उसी प्रकार नहीं होती है जैसे घट में घटपटोभयं यह प्रतीति नहीं होती है। इस प्रकार घटत्वाभाववान् में, न घटत्वतदभाववदुभयं इस प्रतीति के आधार पर साध्या–भाव–घटत्वाभाव के अधिकरण–घटत्वाभाववत् में पर्याप्ति सम्बन्ध से घटत्वतदभाववत् उभयत्व अवृत्ति है यह सिद्ध हो जाता है।

इस अतिव्याप्ति का वारण करने के लिये मथुरानाथ तर्कवागीश कहते हैं कि, 'उभयत्वं उभयत्रैव पर्याप्तं न त्वेकत्र' इस सिद्धान्त को मानने पर व्याप्ति के लक्षण में हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से सम्बन्धित्व का निवेश न कर हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से साध्यसमानाधिकरणत्व का निवेश करना ही उपयुक्त है।

माथुरी

केचित्तु निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या विशेषणताविशेषसम्बन्धेन यथोक्तसम्बन्धेन वा निरवच्छिन्ना-धिकरणता तदाश्रयव्यक्त्यवर्त्तमानं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-यद्धर्मावच्छिन्नाधिकरणत्वसामान्यं तद्धर्मवत्त्वं विवक्षितम्। धूमवान् वह्नेरित्यादौ पर्वतादिनिष्ठवह्न्यधिकरणताव्यक्तेर्धूमाभावाधि-करणावृत्तित्वेऽपि अयोगलकनिष्ठवह्न्यधिकरणताव्यक्तेरतथा-त्वान्नातिव्याप्तिरित्याहुः।

कुछ न्याय के मनीषियों का कथन है कि पूर्व परिष्कृत साध्याभावत्वविशिष्ट से निरूपित जो विशेषणताविशेष सम्बन्ध से अथवा पूर्वोक्त सम्बन्ध से निरवच्छिन्न अधिकरणता, उस अधिकरणता के आश्रय व्यक्ति में अवर्त्तमान जो हेतुतावच्छेदक-सम्बन्ध से अवच्छिन्न यद्धर्म से अवच्छिन्न अधिकरणत्व सामान्य तद्धर्मवत्त्व ही व्याप्ति के लक्षण के रूप में विवक्षित है। पर्वतः, धूमवान्, वह्नेः; इत्यादि असद्धेतु वाले स्थल में पर्वत आदि में रहने वाली वह्न्यधिकरणता व्यक्ति के धूमाभावाधिकरण में अवृत्ति होने पर भी अयोगोलक में रहने वाली वह्न्यधिकरणता व्यक्ति के वैसा न होने से अतिव्याप्ति दोष नहीं होता है।

अब तक इदं वह्निमद्, गगनात्; इस स्थल में अतिव्याप्ति दोष, द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्; तथा सत्तावान्, द्रव्यत्वात्, इन दोनों स्थलों में अव्याप्ति दोष तथा घटत्ववान्, घटत्वतदभाववदुभयत्वात् अर्थात् घटपटोभयत्वात्; इस स्थल में अतिव्याप्ति दोष दिये गये तथा इनके निवारण का विशेष प्रयास भी किया गया। इन सारे दोषों को ध्यान में रखते हुए न्याय के कुछ विद्वानों

ने व्याप्ति के प्रथम लक्षण का परिष्कार इस प्रकार किया है जिससे इन सभी दोषों का निरास अनायास ही हो जाय।[1]

---

१. केचित्तु मत के अनुसार व्याप्ति के लक्षण का परिष्कार करने पर पीछे जिन–जिन स्थलों में अव्याप्ति एवं अतिव्याप्ति दोष हुए थे उनका क्रमशः वारण अधोनिर्दिष्ट रूप में हो जाता है। सर्व प्रथम इदं, वह्निमद्, गगनात् इस असद्धेतु वाले स्थल में असद्धेतु गगन में वह्न्यभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव के होने से जो अतिव्याप्ति होती थी वह इस परिष्कृत लक्षण में नहीं होती है। क्यों कि हेतुतावच्छेदक समवायसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदक गगनत्वावच्छिन्न गगन निष्ठ आधेयता ही अप्रसिद्ध होती है, जिसके कारण आगे आधेयता निरूपित अधिकरणता सामान्य में पूर्व परिष्कृत साध्याभावत्व अर्थात् वह्न्यभावत्वविशिष्ट वह्न्यभावनिष्ठ आधेयता निरूपित स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न निरवच्छिन्नाधिकरणताश्रय निरूपित वृत्तित्वाभाव के भी न होने से लक्षण समन्वय नहीं होता है। इस प्रकार अतिव्याप्ति का निरास हो जाता है।

इसी प्रकार द्रव्यं, गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्त्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में सद्धेतु गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता में साध्य–द्रव्यत्व के अभाव के अधिकरण गुण निरूपित वृत्तिता के होने से जो अव्याप्ति होती थी उस अव्याप्ति का वारण भी हो जाता है। क्यों कि इस लक्षण के अनुसार हेतुतावच्छेदक समवाय सम्बन्धावच्छिन्न, हेतुतावच्छेदक गुणकर्मान्यत्व वैशिष्ट्य सत्तात्वावच्छिन्न आधेयता निरूपित द्रव्य निष्ठ अधिकरणता में पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व–द्रव्यत्वाभावत्वविशिष्ट द्रव्यत्वाभावाधिकरण गुणनिरूपित वृत्तित्वाभाव निराबाध है। फलतः लक्षण समन्वय हो जाने से अव्याप्ति दोष नहीं है यह स्पष्ट है।

इसी प्रकार इस लक्षण में सत्तावान्, द्रव्यत्वात्, इस सद्धेतु वाले स्थल में द्रव्यत्व रूप सद्धेतु में पहले जो सत्ताभावाधिकरण सामान्य आदि से निरूपित हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता के अप्रसिद्ध होने से लक्षण के समन्वय न होने से जो अव्याप्ति होती थी उसका भी वारण केचित्तु मत में परिष्कृत लक्षण को स्वीकार करने से हो जाता है। क्यों कि इस

इन विद्वानों ने व्याप्ति के लक्षण का परिष्कार इस प्रकार किया है— साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न, साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभावत्वविशिष्ट से निरूपित जो विशेषणता विशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से अथवा साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदका—

लक्षण में साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तिता में हेतुतावच्छेदकसम्बन्धा—वच्छिन्नत्व का प्रवेश नहीं किया गया है। इस लक्षण का समन्वय सत्तावान्, द्रव्यत्वात् इस स्थल में इस प्रकार होता है— हेतुतावच्छेदक—समवायसम्बन्धावच्छिन्न, हेतुतावच्छेदक द्रव्यत्वत्वावच्छिन्न अधिकरणता सामान्य में अर्थात् सभी द्रव्य में रहने वाली अधिकरणता में पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व अर्थात् सत्ताभावत्व विशिष्ट सत्ताभाव निष्ठ आधेयता से निरूपित स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न जो सामान्यादि निष्ठा—धिकरणता तादृश अधिकरणताश्रय सामान्य आदि से निरूपित वृत्तिता का अभाव अक्षुण्ण होता है।

पूर्व लक्षण में घटत्ववान्, घटत्वतदभाववत् उभयत्वात्, इस असद्धेतु वाले स्थल में भी असद्धेतु घटत्वतदभाववत् उभयत्व में घटत्वाभाववत् पट में घटत्वतदभाववत् उभयत्व रूप हेतु के पर्याप्ति सम्बन्ध से न रहने के कारण लक्षण समन्वय हो जाने से अतिव्याप्ति होती थी; इस अतिव्याप्ति का वारण भी केचित्तु मत समर्थित लक्षण को स्वीकार करने पर हो जाता है, क्यों कि हेतुतावच्छेदक पर्याप्तिसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदक घटत्वतदभाववत् उभयत्वत्वावच्छिन्न घटत्वतदभाववत् उभयत्व निष्ठ आधेयता निरूपित अधिकरणता का आश्रय घटत्ववत् अर्थात् घट एवं घटत्वाभाववत् अर्थात् पट आदि प्रत्येक भी होंगे। उभयत्व पर्याप्ति सम्बन्ध से उभय में ही रहता है ऐसा नियम मानने वालों के मत में भी उभयत्व की अधिकरणता तो प्रत्येक में रहती है, फलस्वरूप हेत्व—धिकरणता सामान्य के अन्तर्गत घटत्वाभाववत् अर्थात् पट भी होगा इस अधिकरणता में पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व घटत्वाभावत्व से विशिष्ट घटत्वाभावनिष्ठ आधेयता निरूपित स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न निरवच्छिन्न अधिकरणता के आश्रय पट से निरूपित वृत्तित्व के ही होने के कारण लक्षण समन्वय नहीं हो पाता है।

वच्छिन्नप्रतियोगिताक साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगित्व तदवच्छेदकत्व एतदन्यतारावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न निरवच्छिन्न अधिकरणता, उस अधिकरणताश्रय व्यक्ति में अवर्त्तमान जो हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न यद्धर्म अर्थात् हेतुतावच्छेदकधर्म से अवच्छिन्न, अधिकरणत्व सामान्य तद्धर्मवत्त्व।

कुछ विद्वानों द्वारा परिष्कृत इस व्याप्ति के लक्षण में तथा पूर्वचर्चित व्याप्ति के लक्षण में जो मौलिक अन्तर है वह यह है कि, पहले हेतु में साध्याभावाधिकरण से निरूपित वृत्तित्व सामान्याभाव अपेक्षित था और अब हेत्वधिकरणता सामान्य में अर्थात् सभी हेत्वधिकरणताओं में साध्या– भावाधिकरणताश्रय निरूपित वृत्तित्वाभाव अपेक्षित है।

पर्वतः, वह्निमान्, धूमात्; इस सद्धेतु वाले स्थल में सद्धेतु धूम में लक्षण समन्वय इस प्रकार होता है– जितनी भी हेत्वधिकरणताएँ हैं अर्थात् प्रस्तुत स्थल में, धूमाधिकरणताएँ पर्वत, चत्वर, महानस, गोष्ठ आदि में जितनी भी हैं सभी में पूर्व परिष्कृत साध्याभावत्व अर्थात् वह्न्यभावत्वविशिष्ट वह्न्यभाव निष्ठ आधेयता निरूपित विशेषणता विशेष अर्थात् स्वरूपसम्बन्ध से अवच्छिन्न अथवा पूर्वोक्त सम्बन्ध से अवच्छिन्न निरवच्छिन्न अधिकरणता के आश्रय जलह्रद, कूप, नदी, समुद्र आदि से निरूपित वृत्तित्वाभाव है, फलतः लक्षण समन्वय होने से इस केचित्तु मत समर्थित व्याप्ति के लक्षण में असम्भव या अव्याप्ति नहीं है यह स्पष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार पर्वतः, धूमवान्, वह्नेः; इस असद्धेतु वाले स्थल के असद्धेतु वह्नि में जितनी भी हेत्वधिकरणताएँ अर्थात् जितनी भी वह्नि की अधिकरणताएँ जिनमें पर्वत, चत्वर, महानस, गोष्ठ में रहने वाली अधि– करणताएँ हैं इनमें साध्य धूम के अभावत्व से विशिष्ट धूमाभाव में रहने वाली आधेयता से निरूपित विशेषणता विशेष अर्थात् स्वरूप सम्बन्ध से अथवा पूर्वोक्त सम्बन्ध से निरवच्छिन्न अधिकरणता तदाश्रय निरूपित वृत्तित्व का अभाव आ जाने पर भी एक अयोगोलक में रहने वाली जो हेत्वधिकरणता अर्थात् वह्न्यधिकरणता इसमें साध्याभावत्वविशिष्ट निरूपित निरवच्छिन्नाधि–

करणताश्रय निरूपित वृत्तित्व के ही होने से सभी वह्न्यधिकरणताओं में साध्याभावाधिकरणताश्रय निरूपित वृत्तित्वाभाव न आने से लक्षण समन्वय नहीं होता है, फलत: इस लक्षण में अतिव्याप्ति भी नहीं है यह सिद्ध होता है। इस प्रकार यह लक्षण अव्याप्ति अतिव्याप्ति एवं असम्भव इन तीनों दोषों से रहित है यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है।

माथुरी

अन्ये तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदका–वच्छिन्नस्वाधिकरणताश्रयवृत्ति यन्निरवच्छिन्नाधिकरणत्वं तदवृत्ति निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितयथोक्तसम्बन्धावच्छिन्नाधि–करणतात्वकत्वमिति विशेषणविशेष्य–भावव्यत्यासे तात्पर्यम्, स्वपदं हेतुपरम्, इत्थञ्च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्, कपि–संयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादावपि नाव्याप्तिरित्याहुरिति सङ्क्षेपः।

किन्हीं अन्य नैयायिकों के मत में तो हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न, हेतुतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न, स्व अर्थात् हेतु की अधिकरणता के आश्रय में वृत्ति जो निरवच्छिन्ना–धिकरणत्व उसमें अवृत्ति पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व विशिष्ट से निरूपित पूर्वोक्त सम्बन्ध से अवच्छिन्न अधिकरणतात्वकत्व ही व्याप्ति का लक्षण है ऐसा विशेषण विशेष्यभाव के व्यत्यास अर्थात् वैपरीत्य में इन विद्वानों का तात्पर्य है। इस लक्षण में स्व पद से हेतु का ग्रहण करना है। इस प्रकार कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् तथा कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात् इत्यादि सद्धेतु वाले स्थल में भी अव्याप्ति दोष नहीं होता है ऐसा सङ्क्षेप में समझना चाहिए।

किन्हीं अन्य नैयायिकों के द्वारा जो यह व्याप्ति का प्रथम लक्षण परिष्कृत हुआ है इसमें केचित्तु मत को मानने वाले अन्य विद्वानों के द्वारा जो लक्षण प्रस्तुत किया गया उससे भेद जो है वह केवल विशेषण विशेष्य भाव के परिवर्त्तन के कारण ही है।

केचित्तु मत के अनुयायी विद्वानों के मत में हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न, हेतुतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हेतु निष्ठ अधिकरणता सामान्य विशेष्य था और साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदक–धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक साध्याभावत्वविशिष्ट साध्याभावनिष्ठ स्वरूप–सम्बन्धावच्छिन्न अथवा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाव वृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगित्व तदवच्छेदकत्व एतदन्यतरावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न आधेयता निरूपित निरवच्छिन्न जो अधिकरणता तदाश्रयनिरूपित वृत्तित्वाभाव विशेषण था।

अन्ये तु मतानुयायी अन्य विद्वानों के मत में जो व्याप्ति का लक्षण परिष्कृत रूप में सामने आता है उसमें पूर्वपरिष्कृत साध्याभावत्व से अवच्छिन्न साध्याभाव निष्ठ आधेयता से निरूपित अधिकरणतात्व विशेष्य के रूप में माना गया है तथा हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हेतुतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हेतु निष्ठ आधेयता से निरूपित अधिकरणताश्रय वृत्ति निरवच्छिन्न अधिकरणता से निरूपित वृत्तित्वाभाव विशेषण माना गया है।

इन दोनों मतों में स्वीकृत व्याप्ति लक्षण में एक विशेष अन्तर यह भी है कि केचित्तु मत के अनुयायियों ने निरवच्छिन्नत्व का निवेश साध्याभाव की अधिकरणता में किया है परन्तु अन्ये तु मत के अनुयायियों ने हेत्वधिकरण वृत्ति अधिकरणता में निरवच्छिन्नत्व का निवेश किया है।

इस भेद के अतिरिक्त इस अन्ये तु मत के अनुसार परिष्कृत लक्षण में केचित्तु मत के अनुसार स्वीकृत लक्षण की अपेक्षा लाघव भी द्रष्टव्य है। केचित्तु मत के अनुसार प्रस्तुत लक्षण में हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हेतुतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न आधेयता से निरूपित अधिकरणता सामान्य

का निवेश होने के कारण साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव में हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हेतुतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न हेतु निष्ठ आधेयता से निरूपित अधिकरणतात्व की व्यापकता का प्रवेश माना जाता है परन्तु अन्ये तु मत के द्वारा अभिप्रेत लक्षण में हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध से अवच्छिन्न हेतुतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न अधिकरणता का इस अधिकरणताश्रय वृत्ति निरवच्छिन्न अधिकरणत्व से निरूपित वृत्तित्वाभाव की प्रतियोगिता के अवच्छेदक कोटि में प्रवेश है। फलतः वैसी अधिकरणता सामान्य का अन्ये तु मत में स्वतन्त्र रूप से निवेश न होने के कारण लाघव करतलामलकवत् अत्यन्त स्पष्ट है।

इस लक्षण में स्व पद हेतु का अवबोधक है। इस लक्षण में एक यह भी वैशिष्ट्य है कि साध्याभावधिकरणता में यहाँ निरवच्छिन्नत्व का प्रवेश न होने के कारण अयं कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् एवं कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात् इन सद्धेतु वाले स्थलों में कपिसंयोग रूप साध्याभाव की निरवच्छिन्न अधिकरणता के अप्रसिद्ध होने के कारण प्रथम व्याप्ति लक्षण की जो अव्याप्ति होती थी उसका भी यहाँ निरास अनायास ही हो जाता है।

।। इति शम्।।

प्रथम लक्षण का हिन्दी व्याख्यान सम्पन्न

आन्वीक्षिकीपण्डितमण्डलीषु सत्ताण्डवैरध्ययनं विनापि।
मदुक्तमेतत् परिचिन्त्य धीरा निःशङ्कमध्यापनमातनुध्वम्।।

–मथुरानाथतर्कवागीशः

द्वितीयं व्याप्तिलक्षणम्

द्वितीयलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

प्रो० हरेरामत्रिपाठी

साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्